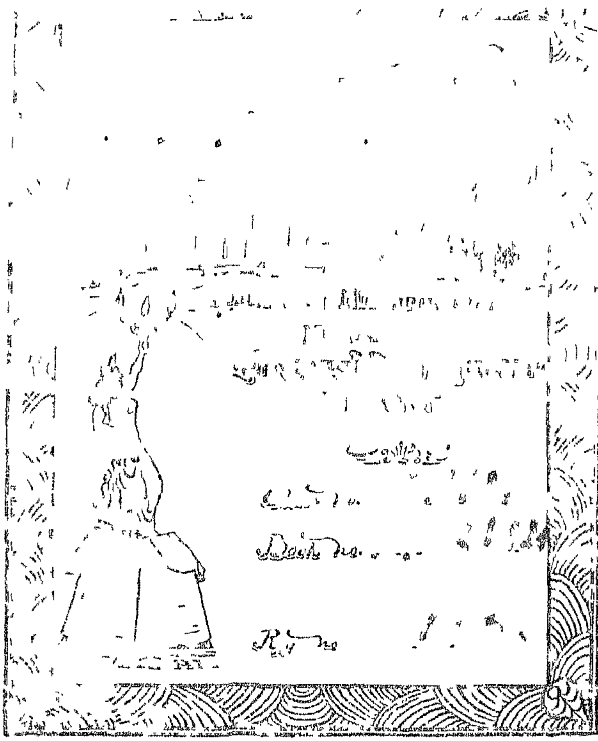

Book No.

म
धु
व
न

मूल लेखक—

श्रीरवीन्द्रनाथ ठाकुर

अनुवादक—

श्रीमोहन लहरी

प्रकाशक—

उदय प्रकाशन मन्दिर,

बनारस।

मूल्य १।)

प्रकाशक—
उदय प्रकाशन मंदिर,
बनारस।

Durga Sah Municipal Library,
NAINITAL.
दुर्गासाह म्युनिसिपल लाइब्रेरी
नैनीताल
Class No. ......891·3......
Book No. ......R 12 Mn.......
Received on ......Aug......1953......

[सर्वाधिकार प्रकाशक के आधीन]

3168

मुद्रक—
विश्वनाथप्रसाद (भगतजी)
श्रीराम प्रेस, दुलानाला, बनारस।

१

पीठ की ओर तकिये ऊँचे किये हुए हैं। रोग-शय्या पर अधलेटी पड़ी है नीरजा। पाँवों पर है एक स्वच्छ रेशमी चादर मानो हल्के मेघों की छाया में चाँद की फीकी ज्योत्स्ना। मुख मण्डल पर शंख के रंग की सी छाया है। चूड़ियाँ ढीली होकर पड़ी हैं, रुग्ण हाथों पर नीलशिराओं की रेखा है और घन पक्ष्म नयन-पल्लवों पर लगी हुई है रोग की कालिमा।

मेज पर श्वेत संगमर्मर से जड़ा दीवाल पर है रामकृष्ण परमहंस देव का चित्र। घर में एक पलङ्ग एक तिपाई बेंत के दो मोढ़े और कोने में कपड़े टाँगने की अलगनी के अतिरिक्त और कोई सामान नहीं है। एक कोने में पीतल की एक कलसी में है रजनीगन्धा का एक गुच्छ, जिसकी मृदु सुगन्धि कमरे की बन्द हवा में अवरुद्ध है।

पूर्व की ओर की खिड़की खुली है। यहाँ से नीचे उद्यान में तैयार झूमता हुआ दीखता है अरकिड का घर और उसकी दीवारों के अंग-अंग से लिपटी हुई है अपराजिता की लता। समीप ही झील की धार से पम्प चल रहा है और उसका कुल-कूल करता हुआ जल बहा चला जा रहा है नालियों से होकर फूल-पौधों की क्यारियों की धार में।

गन्ध-निविड़ आम के बगीचे में कोयल कूक रही है, किन्तु मूर्छा प्राय-सी।

बगीचे की ड्योढ़ी से 'टनटन' करके दोपहर का घण्टा बजा। साँय-साँय करती दोपहरी की ही तरह था उसका स्वर। मालियों की छुट्टी तीन बजे तक होगी। इस घण्टे के स्वर से नीरजा का अन्तस्तल व्यथित हो उठा, उसका मन उदास हो गया। आया दरवाजा बन्द करने आई। नीरू ने कहा—नहीं, रहने दे। वह उस ओर ताकती रह गई जहाँ वृक्षों के नीचे-नीचे धूप की छाया खिसकती चली जा रही थी।

उसके स्वामी आदित्य ने फूलों के व्यवसाय में नाम किया है। विवाह के दूसरे दिन से नीरजा और उसके स्वामी का प्रेम इसी उद्यान के नाना कार्यों और सेवाओं की अनेक धाराओं से आकर एक हुआ था। यहाँ के फूलों और पत्तों में दोनों के सम्मिलित आनन्द ने नवीन सौन्दर्य लेकर नवीन रूप में विकास पाया था। जिस तरह कोई प्रवासी डाक आने के विशेष दिन अपने बन्धु-बान्धवों के प्रेम-पत्र की प्रतीक्षा करता है, उसी तरह वे भी प्रतीक्षा करते थे, भिन्न-भिन्न ऋतु में भिन्न-भिन्न पौधों की पुंजित अभ्यर्थना के लिये।

आज नीरजा के मन में केवल उसी दिन का चित्र है। बात बहुत दिनों की नहीं है तो भी मन में ऐसा प्रतीत होता है कि युगान्तर का इतिहास है जो विस्मृत है। उद्यान के पश्चिम की ओर एक प्राचीन महानीम का वृक्ष है। इसी की जोड़ी का एक और नीम का वृक्ष था, किन्तु वह कब का जीर्ण होकर गिर गया और उसकी पिंड को समान करके काट कर एक छोटी टेबिल-सी बनवा ली गई है। वहीं तो दोनों बैठकर प्रातःकाल चाय पीते थे, फिर वृक्ष की हरी डालियों को बेंधकर उनके पाँवों के समीप तक धूप आ जाती और प्रसाद प्रार्थी बन कर पहुँच जाता शालिग काष्ठकार।

इसके उपरान्त दोनों उद्यान के नाना कार्यों के लिये मिलकर चल पड़ते। नीरजा के माथे पर रहा करती फूलदार रेशमी छतरी और आदित्य के माथे पर गोला टोप और कमर में बेलदार कमर पट्टा। बन्धु बान्धवों के भेंट के लिये पहुँचने पर उद्यान के कार्यों में मिल जाया करती थी लौकिकता। इन लोगों के मुख से प्रायः सुना जाता—"सच कहते हैं भाई, तुम्हारी वाटिका देखकर हिंसा होने लगती है।" कोई कोई अनाड़ी की तरह पूछ बैठता—"वह क्या है, सूरजमुखी?" नीरजा खुश होकर हँसकर उत्तर देती—"नहीं नहीं, वह है गेंदा।" एक बार एक विषय बुद्धि-प्रवीन सज्जन ने प्रश्न किया था —"इतनी बड़ी मोतिया बेल कैसे उत्पन्न की नीरजा देवी! आपके हाथों में जादू है। यह है कुमुदनी जैसी।"

समझदार सज्जन को पुरस्कार मिला—"इला माली की नजर पैदा करनी है पाँच टब के बराबर, उसे ले गया है, बेलफूल का झाड़।" मुग्ध मित्रों को लेकर यों ही कई दिन होता वाटिका-भ्रमण, फूलों के बगीचे में, फलों के बगीचे में और साग भाजी के बगीचे में। विदा होते समय उनकी झोलियों में नीरजा भर देती गुलाब, मेगनोलिया, कारनेशन, साथ ही पपीते, कागजी नीबू, कथल बेल। 'उनके बगीचे' की कथेल बेल अत्यन्त आकर्षक थी। यथा ऋतु सबके बाद आता नारियल का जल। तृषित कह उठते—"कितना मीठा जल है!" उत्तर मिलता—"हमारे बाग के नारियलों का जल।" सब कहते—"हाँ यही तो कहते हैं।"

भोर बेला की वृक्ष—छाया में दार्जीलिंग चाय की वाष्पमिश्रित उन नाना ऋतुओं की गन्ध-स्मृति उसकी दीर्घ निश्वासों में मिलकर उसके मन में हाय-हाय कर उठती है। उन सोने के रंग से रंगे दिनों को किस अपहरणकारी से छीन कर वह फिर वापस लाना चाहती है। विद्रोही मन किसी को सामने नहीं पाता। क्यों? भाग्य को मान कर भले मनुष्यों की तरह माथा झुकाकर रह जाने वाली नहीं यह रमणी! इसके लिये उत्तरदायी कौन?

गन्ध-निविड़ आम के बगीचे में कोयल कूक रही है, किन्तु मृत प्राय-सी।

बगीचे की डेवढ़ी से 'टनटन' करके दोपहर का घण्टा बजा। साँय-साँय करती दोपहरी की ही तरह था उसका स्वर। मालियों की छुट्टी तीन बजे तक होगी। इस घण्टे के स्वर से नीरजा का अन्तस्तल व्यथित हो उठा, उसका मन उदास हो गया। आया दरवाजा बन्द करने आई। नीरू ने कहा—नहीं, रहने दे। वह उस ओर ताकती रह गई जहाँ वृक्षों के नीचे-नीचे धूप की छाया खिसकती चली जा रही थी।

उसके स्वामी आदित्य ने फूलों के व्यवसाय में नाम किया है। विवाह के दूसरे दिन से नीरजा और उसके स्वामी का प्रेम इसी उद्यान के नाना कार्यों और सेवाओं की अनेक धाराओं से आकर एक हुआ था। यहाँ के फूलों और पत्तों में दोनों के सम्मिलित आनन्द ने नवीन सौन्दर्य लेकर नवीन रूप में विकास पाया था। जिस तरह कोई प्रवासी डाक आने के विशेष दिन अपने बन्धु-बान्धवों के प्रेम-पत्र की प्रतीक्षा करता है, उसी तरह वे भी प्रतीक्षा करते थे, भिन्न-भिन्न ऋतु में भिन्न-भिन्न पौधों की पुंजित अभ्यर्थना के लिये।

आज नीरजा के मन में केवल उसी दिन का चित्र है। बात बहुत दिनों की नहीं है तो भी मन में ऐसा प्रतीत होता है कि युगान्तर का इतिहास है जो विस्मृत है। उद्यान के पश्चिम की ओर एक प्राचीन महानीम का वृक्ष है। इसी की जोड़ी का एक और नीम का वृक्ष था, किन्तु वह कब का जीर्ण होकर गिर गया और उसकी पिंड को समान करके काट कर एक छोटी टेबिल-सी बनवा ली गई है। वहीं तो दोनों बैठकर प्रातःकाल चाय पीते थे, फिर वृक्ष की हरी डालियों को बेंधकर उनके पाँवों के समीप तक धूप आ जाती और प्रसाद प्रार्थी बन कर पहुँच जाता शालिग काष्ठकार।

इसके उपरान्त दोनों उद्यान के नाना कार्यों के लिये मिलकर चल पड़ते। नीरजा के माथे पर रहा करती फूलदार रेशमी छतरी और आदित्य के माथे पर गोला टोप और कमर में बेलदार कमर पट्टा। बन्धु बान्धवों के भेंट के लिये पहुँचने पर उद्यान के कार्यों में मिल जाया करती थी लौकिकता। इन लोगों के मुख से प्रायः सुना जाता—"सच कहते हैं भाई, तुम्हारी वाटिका देखकर हिंसा होने लगती है।" कोई कोई अनाड़ी की तरह पूछ बैठता—"वह क्या है, सूरजमुखी?" नीरजा खुश होकर हँसकर उत्तर देती-"नहीं-नहीं, वह है गेंदा।" एक बार एक विषय बुद्धि-प्रवीन सज्जन ने प्रश्न किया था —"इतनी बड़ी मोतिया बेल कैसे उत्पन्न की नीरजा देवी! आपके हाथों में जादू है। यह है कुमुदनी जैसी।"

समझदार सज्जन को पुरस्कार मिला—"हला माली की नजर पैदा करनी है पाँच टब के बराबर, उसे ले गया है, बेलफूल का झाड़।" मुग्ध मित्रों को लेकर यों ही कई दिन होता वाटिका-भ्रमण, फूलों के बगीचे में, फलों के बगीचे में और साग भाजी के बगीचे में। विदा होते समय उनकी झोलियों में नीरजा भर देती गुलाब, मेगनोलिया, कारनेशन, साथ ही पपीते, कागजी नीबू, कयत बेल। 'उनके बगीचे' की कयेत बेल अत्यन्त आकर्षक थी। यथा ऋतु सबके बाद आता नारियल का जल। तृषित कह उठते—"कितना मीठा जल है!" उत्तर मिलता—"हमारे बाग के नारियलों का जल।" सब कहते—"हाँ यही तो कहते हैं।"

भोर बेला की वृक्ष-छाया में दार्जीलिंग चाय की वाष्पमिश्रित उन नाना ऋतुओं की गन्ध-स्मृति उसकी दीर्घ निश्वासों में मिलकर उसके मन में हाय-हाय कर उठती है। उन सोने के रंग से रंगे दिनों को किस अपहरणकारी से छीन कर वह फिर वापस लाना चाहती है। विद्रोही मन किसी को सामने नहीं पाता। क्यों? भाग्य को मान कर भले मनुष्यों की तरह माथा झुकाकर रह जाने वाली नहीं यह रमणी! इसके लिये उत्तरदायी कौन?

कौन विराट पागल ? इस तरह सम्पूर्ण सृष्टि को इतने निरर्थक भाव से उलट पलट कौन कर सका ?

विवाहोपरान्त दस वर्ष एक साथ अविभिन्न सुख से कट गये। मन ही मन सहेलियों ने ईर्ष्या की—समझती है कि उसकी जो बाजारू दर है उससे भी बहुत अधिक उसे मिल गया है। पुरुष मित्र आदित्य को कहा करते—"लकी डॉग।"

नीरजा के संसार-सुख की पालवाली नौका पहिले जिस घटना को लेकर 'धस' करके तली पर जा बैठी उसका आरम्भ उसकी 'डॅली' कुक्कुरी-घटित घटना से ही हुआ। गृहिणी के इस संसार में प्रवेश करने के पूर्व 'डली' ही उसके स्वामी के घर की एकमात्र संगिनी थी। तत्पश्चात् उसकी निष्ठा दम्पति के बीच में विभक्त हो गई। नीरजा को ही उसका विशेष भाग मिला। दरवाजे के पास गाड़ी आती देखते ही उसका मन मचल उठता था। घन-घन जंजीर-आन्दोलन करके उपस्थित रथ की यात्रा के विरुद्ध आपत्ति खड़ी कर देती। मालिक की तर्जनी का संकेत पाकर बिना निमंत्रण के ही गाड़ी में कूद कर बैठने के दुस्साहस में निरस्त हो जाती। फिर लम्बी साँस छोड़कर जंजीर की कुण्डली में नैराश्य को छिपाये दरवाजे के पास पड़ी रह जाती। उनके लौटने में देर होने पर मुख उठाकर हवा सूँघती हुई छटपट करती कुक्कुरों की अव्यक्त भाषा में आकाश से करुण प्रश्न उच्छ्वसित करती। अन्त में उसे हठात् न जाने क्या रोग हो गया।

अन्त तक उनके मुख की ओर कातर दृष्टि स्तब्ध किये हुए नीरजा की गोद में माथा रखे मर गई।

प्रेम में नीरजा की तीव्र आस्था थी। उसके प्रेम के विरुद्ध विधाता का हस्तक्षेप भी उसकी कल्पना से परे था। इतने दिन अनुकूल संसार में उसने निःसंशय विश्वास किया था। आज तक अविश्वास का कोई कारण भी न घटा था। किन्तु जब आज 'डली' के पक्ष में अभावनीय

रूप से मृत्यु सम्भव हुई तब अपने दुर्ग प्राचीर में उसे प्रथम छिद्र दिखाई दिया। मन को यह अलक्षण के प्रथम प्रवेश द्वार-सा लगा। विश्व का कर्म-कर्त्ता अव्यवस्थित चित्त-सा प्रतीत हुआ। उसके आपात प्रत्यक्ष प्रसाद पर और आस्था रखने से काम न चलेगा।'

नीरजा से सन्तान होने की आशा को सभी ने छोड़ दिया था। अपने आश्रित गणेश के शिशु को लेकर नीरजा की प्रतिहत स्नेहवृत्ति में जब प्रबल आलोड़न आरम्भ हुआ और शिशु को उसके अशान्त अभिघात असह्य हो उठे, उसी समय हुई सन्तान सम्भावना। भीतर-भीतर मातृ-हृदय भर उठा, नव जीवन की प्रभात आभा से भावी काल का दिगन्त रक्तिम हो चला और नीरजा वृक्ष की छाया में बैठकर आगन्तुक के अनेक साज के लिये सिलाई के कार्य में व्यस्त होने लगी।

तत्पश्चात् आया प्रसव का समय। धात्री ने आसन्न संकट को समझा। आदित्य इतना अधिक अस्थिर हो उठा कि उसे डाक्टर ने भर्त्सना करके दूर ही रखा। अस्त्राघात करना पड़ा और शिशु को मारकर जननी की रक्षा की गई। बाल-शय्या शायिनी वैशाख की नदी की भाँति उसकी स्वल्परक्त देह क्लान्त पड़ी रह गई। प्राण-शक्ति की अजस्रता एकाएक निःस्व हो गई। बिछौने के सामने की खिड़की खुली तप्त वायु में मुचकुन्द के फूलों की गन्ध आती कभी वातावी कुसुम के निःश्वास, मानो उसके वे पूर्वकालीन दूरवर्ती वसन्त के दिन मृदु कण्ठ से उससे पूछते हों—"कैसी हो?"

सबसे अधिक उसे अखरा तब जब उसने देखा कि उद्यान के कार्य में सहयोगिता के लिये आदित्य की दूर सम्पर्कीय बहिन सरला को लाना पड़ा। खुली खिड़की से जब उसे दिखाई पड़ता कि अभ्र और रेशम के कार्य-रूप ढुक्का माथे को लेकर सरला बगीचे के मालियों को खुट-खुटाती फिरती है, तब उसे अपने अकर्मण्य हाथ पावों पर खीझ हो उठती और स्वस्थ अवस्था में इसी सरला को प्रत्येक ऋतु के नवीन

'चारारोपन उत्सव' में वही निमंत्रण देकर बुलाती थी। सबेरे से काम चलता। तदनन्तर तैर कर झील में स्नान होता, फिर पेड़ के नीचे केले की पत्तियों में भोजन कर एक ग्रामोफोन पर देशी-विदेशी संगीत बजता रहता। यात्रियों के लिये जुटता-दही, चूड़ा, सन्देश। तीन तल्लों से उनका कल-रव सुन पड़ता। क्रम से दिन डूबने को आता, अपराह्न वातास से झील का जल सिहर उठता, बबुल की डालों पर पक्षी बोल उठते, आनन्दमय क्लान्ति से होता दिवसावसान।

उसके मन के भीतर जो केवल मीठा रस था आज वह कैसे कटु हो गया, आजकल के दुर्बल शरीर से जिस तरह वह अपरिचित है उसी तरह आज का तीव्र नीरस स्वभाव भी उसका परिचित स्वभाव नहीं। इस स्वभाव में कोई दाक्षिण्य नहीं। कभी-कभी यह दारिद्र्य उसके समीप स्पष्ट हो उठता है, मन में लज्जा जाग उठती है, तब भी वह उसे सम्हाल नहीं पाती। भय होता है कि उसकी यह दीनता कहीं आदित्य को प्रकट न हो गई हो या किसी दिन वह यह प्रत्यक्ष न देख ले कि नीरजा का आजकल का मन चमगादड़ के चञ्चुक्षत फल की तरह भद्र प्रयोजन के अयोग्य है।

दोपहर का घण्टा बजा। माली चले गये। समस्त उद्यान निर्जन हो गया। नीरजा दूर की ओर ताकती रह गई जहाँ दुराशा की मरीचिका भी आभास नहीं देती, जहाँ छायाहीन धूप में शून्यता के अनन्तर शून्यता की अनुवृत्ति होती है।

२

नीरजा ने पुकारा—"रोशनि !"

आया ने घर में प्रवेश किया। प्रौढ़ा, कच्चे-पक्के बाल, कठोर हाथों में पीतल के मोटे कंकन, घांघरे के ऊपर ओढ़नी। मांस विरल देह की भंगी और शुष्क मुख के भाव दोनों में थी चिरस्थायी कठिनता मानो उसकी अदालत में इनके संसार के प्रतिकूल राय देने के लिये वह विराजमान थी। उसने नीरजा को मनुष्य किया था समस्त दर्द स्वयं ओढ़कर। उसके समीप जो आते-जाते यहाँ तक कि नीरजा का स्वामी भी तो भी वह एक सतर्क विरुद्धता रखती सबके सम्बन्ध में।

घर में आकर उसने पूछा—"पानी ला दूँ बेटी ?"

"नहीं, बैठ।"

नीरजा की जरूरत की बातें कहे, यही चाहिये आया को। वह थी उसकी स्वगत उक्तियों का वादन।

नीरजा ने कहा—"आज सबेरे मैंने दरवाजा खुलने का शब्द सुना।"

आया ने कुछ न कहा—किन्तु उसके विरक्त मुख के भाव का यह अर्थ था—"अब नहीं सुना जाता।"

नीरजा ने अनावश्यक प्रश्न किया—"मालूम होता है कि सरला को लेकर बगीचे गये थे।"

निश्चित जानी हुई बात, फिर भी रोज एक ही प्रश्न ! थोड़ा हाथ उठाकर मुँह खोल कर आया चुप बैठी रही।

नीरजा बाहर की ओर ताकती मन में आप ही बोलने लगी—"मुझे भी जगा लेते सबेरे। मैं भी तो बगीचे के काम पर जाती थी, ठीक इसी समय। वह कोई बहुत दिनों की बात तो नहीं है।"

इस आलोचना में योग देनेवाले किसी से वह आशा नहीं करती तो भी आया रुक न सकी। बोली—"उसके न ले जाने से बगीचा शायद सूख जाता।"

नीरजा आप ही बोलती रही—"सबेरे के फूलों का चालान न्यू मार्केट को भेजे बिना मेरा एक दिन भी न कटता था। फूलों का चालान आज उसी तरह गया था, गाड़ी की आहट मिली थी। आजकल चालान कौन देखता है रोशनि?"

आया ने इस जानी-बूझी बात का कोई उत्तर न दिया, ठोड़ी पकड़े बैठी रही।

नीरजा ने आया से कहा—"और कुछ भी हो, जब तक मैं थी, माली लोग धोखा नहीं दे पाये।"

आया गर्वित हो उठी। बोली—"वह दिन नहीं है। अब दोनों हाथों लूट चलती है।"

"सचमुच ही क्या?"

"क्या मैं झूठ कहती हूँ। कलकत्ता के नये बाजार में पहुँचते ही हैं कितने फूल। जमाई बाबू के बाहर होते ही खिड़की के दरवाजे मालियों का फूलों का बाजार लग जाता है।"

"ये कोई देखते नहीं?"

"देखने की इतनी गरज किसकी?"

"जमाई बाबू से बोलती क्यों नहीं?"

"मैं बोलने वाली कौन? अपनी इज्जत बचाकर तो चलना होगा। तुम क्यों नहीं बोलतीं? सब तो तुम्हारा ही है।"

"होने दे, होने दे, अच्छा ही है। चलने दे कुछ दिन यों ही फिर तो जब छार-खार हो जायगा आप ही दिखाई पड़ेगा। एक दिन मालूम होगा ही कि माँ से बड़ा सौतेली माँ का प्यार नहीं होता। चुप करके बैठ न।"

"किन्तु कहती यह भी हूँ बेटी कि तुम्हारे इस हला माली को देने से कोई काम नहीं होता।"

हला को काम में उदासीनता ही आया की विरक्ति का एकमात्र कारण था, सो नहीं, उस पर नीरजा का स्नेह असंगत रूप से बढ़ उठा था, सबसे गुरुतर कारण यह था।

नीरजा बोली—"माली को दोष नहीं देती। नई मालकिन से पटेगी कैसे ? उसके यहाँ मालीगिरी होती है सात पुश्तों से और तुम्हारी दीदी मालकिन की है किताबों में पढ़ी विद्या। हुकुम चलाने को आने से क्या वह मान लेगा ? वह बिना प्रयोजन के कानून मानना नहीं चाहता, आकर करता है मेरे पास नालिश। मैं कह देती हूँ कि बातें कान में न दे चुप करके बैठ।"

"उसको जमाई बाबू उस दिन छुड़ाने को तैयार थे।"

"क्यों किसलिये ?"

"वह बैठा-बैठा बीड़ी पी रहा था और उसीके सामने जमाई बाबू ने कहा—जानवर को मारता क्यों नहीं ? उसने मुँह पर जवाब दिया—मैं जानवर को मारूँ ? जानवर तो मुझे ही मारता है। मुझे अपनी जान का डर नहीं।"

सुनकर नीरजा हँस पड़ी। बोली—"उसकी बातें ही ऐसी हैं। चाहे जो हो, वह मेरे अपने हाथों तैयार हुआ है।"

"जमाई बाबू तुम्हारी ही खातिर तो उसकी बरदाश्त करते हैं। चाहे वह जानवरों को घुसने दे, चाहे गैंड़ों को। किन्तु मैं कहती यह हूँ कि उसको इतना बढ़ने देना ठीक नहीं।"

"चुपकर रोशनि ! क्या मैं नहीं समझती कि वह किस दुःख से जानवर नहीं हंकालता। उसकी छाती में जलती है आग। वही तो वह हला माथे पर गमछा डाले कहाँ चला। बुला तो उसको।"

आया के बुलाने से हलधर माली घर में आया। नीरजा ने पूछा—"क्यों रे आजकल कोई नई फरमाइश है?"

हला बोला—"है क्यों नहीं। सुनकर हँसी भी आती है, आँखों में आँसू भी आ जाते हैं।"

"कैसी है, सुनूँ।"

"यह जो सामने मल्लिकों का पुराना मकान टूट रहा है, वहाँ से ईंटों की चुरकन लाकर पौधों के नीचे बिछानी होगी। यही तो है उनका हुकुम।" मैंने कहा—धूप के वक्त पौधों को गरमी लगेगी। मेरी बात कान में ही नहीं देतीं।

"बाबू से क्यों नहीं कहा?"

"बाबू से कहा था। बाबू ने डाँट बताकर कहा—चुप करके रह। भाभी जी, छुट्टी दो मुझे। मुझसे न सहा जायगा।"

यही तो देख रही हूँ कि तू टोकरी भर कर कचड़ा उठा लाया।

"भाभी जी, तुम मेरी सदा की मालकिन हो। तुम्हारे ही सामने मेरा सिर नीचा कर दिया। देशवालों के सामने मेरी जात चली जायगी। क्या मैं कुली मजूर हूँ?"

"अच्छा, अभी जा। तेरी दीदी मालकिन जब तुझसे ईंट चुरकन लाने को बोलें तब मेरा नाम लेकर कहना कि मैंने मना कर दिया है। खड़ा रह जाना।"

"देश से चिट्ठी आई है कि बड़े हल का बैल मर गया है।" कहकर माथा खुजलाने लगा।

नीरजा बोली—"नहीं मरा है, बिलकुल बचा हुआ है। ले दो रुपये और ज्यादा बक मत।" इतना कहकर तिपाई के ऊपर के पीतल के डब्बे में से निकाल कर दो रुपये दे दिये।

"अब और क्या?"

"घरवाली के लिये एक पुराना कपड़ा। जय-जयकार हो आपकी।" इतना कहकर पान से रचा काले वर्ण का मुँह फैलाकर हँस पड़ा।

नीरजा बोली—"रोशनि अलगनी पर का वह कपड़ा दे दे उसको।"

रोशनि जोर से सिर घुमाकर बोली—"ये क्या बात, उसके लिये तुम्हारी ढाका साड़ी ?"

"रहने दे ढाका साड़ी। मेरी नजर में आज सब साड़ियाँ एक-सी हैं। कब पहनूँगी और उसे ?"

रोशनि ने मुँह दृढ़ करके कहा—"नहीं, यह नहीं होगा। उसको तुम्हारी लाल किनारे की मील की साड़ी दूँगी। देख हला लड़की को यदि इस तरह हैरान करेगा तो बाबू से कहकर तुझे दूर करवा दूँगी।"

हला नीरजा के पाँव पर गिर कर रोने के स्वर में बोला—"मेरा भाग्य फूटा है भाभी जी।"

"क्यों रे क्या हुआ तुझको ?"

"आया जी को मैं मौसी कहता हूँ। मेरी माँ नहीं है। इतने दिन तक समझता था कि हतभाग हला को आया जी प्यार करती हैं। आज भाभी जी, यदि आपकी मिहरबानी हुई तो उन्होंने क्यों झगड़ा उठा दिया ? किसी का दोष नहीं, दोष मेरे भाग्य का है। नहीं तो अपने हला को पराये हाथ में सौंपकर तुम बिछौने में पड़तीं।"

"डर नहीं रे, तेरी मौसी तुझे चाहती तो है। तेरे आने के पहिले तेरा गुण-गान कर रही थी"। रोशनि ! दे उसको यही कपड़ा, नहीं तो वह धर्ना देकर पड़ा रहेगा।

आया ने अत्यन्त विरस मुँह से कपड़ा लाकर उसके सामने फेंक दिया। हला ने उसे उठा कर झुक कर प्रणाम किया। फिर उठकर खड़े होते हुए बोला—"वह गमछा लेकर लपेट लेता हूँ भाभी जी, मेरे हाथ मैले हैं, दाग लग जायँगे।" सम्मति की बिना अपेक्षा किये ही

३।०४

हला अलगनी पर से तौलिया लेते हुए उसमें कपड़ा लपेट कर जल्दी से पाँव बढ़ाता निकल भागा।

नीरजा ने आया से पूछा—"अच्छा आया, तुझे ठीक मालूम है कि बाबू घूमने गये हैं ?"

"अपनी आँखों देखा था। कितने उतावले ! टोप लेना भी भूल गये।"

"आज प्रथम यह हुआ कि मुझे जो फूल प्रतिदिन प्राप्त होता था उसके मिलने में अन्तर पड़ा। अब दिन प्रतिदीन यह अन्तर बढ़ेगा। एक दिन होगा यह कि मैं जा पड़ूँगी अपने संसार के उस घूरे पर जहाँ फेंक दिया जाता है बुझा हुआ कोयला।"

सरला को आते देखकर आया मुँह टेढ़ा करके चली गई। सरला घर में गई। उसके हाथ में था एक अरकिड। फूल शुभ्र, पंखुड़ियों के अग्रिम भाग पर बैंगनी रेखाएँ, मानो हो यौना-मिश्रित मस्त प्रजापति। सरला दुबली-पतली, लम्बी, साँवला रंग, पहिले दीख पड़ती हैं उसकी बड़ी-बड़ी आँखें, उज्ज्वल एवं करुण। खद्दर की मोटी साड़ी अयत्न से बँधे बाल श्लाघनीय बन्धन में काँधे पर पड़े थे। असज्जित देह ने यौवन के समागम को अनादृत कर रखा था।

नीरजा ने उसके मुँह की ओर नहीं ताका। सरला ने धीरे-धीरे फूल को बिछौने पर उसके सामने रख दिया।

विरक्ति के भाव को बिना गोपन किये ही नीरजा बोली—"किसने लाने को कहा था ?"

"आदित्य दादा।"

"खुद नहीं आये ?"

"न्यू मार्केट की दूकान को चाय पीते ही शीघ्र जाना पड़ा।"

"इतनी क्या जल्दी थी ?"

"कल रात्रि में आफिस का ताला तोड़कर रुपये चोरी होने की खबर आई है।"

"खींच-तान करके क्या पाँच मिनट का समय भी न दे सकते थे ?"

"कल रात को तुम्हारा दर्द बढ़ गया था। सवेरे नींद में पड़ी थीं। दरवाजे के पास तक आकर लौट कर चले गये। मुझसे कह गये थे कि यदि दोपहर तक खुद न आ पायें तो यह फूल मैं तुम्हें यों दे दूँ।"

दिन का कार्य आरम्भ होने के पूर्व आदित्य रोज विशेष रूप से चुनकर एक फूल स्त्री के बिस्तर पर रख जाता था। नीरजा प्रतिदिन उसकी अपेक्षा करती। आज के दिन आदित्य फूल विशेष सरला के हाथों में दे गया। उसके मन में यह बात न आई कि फूल देने का प्रधान मूल्य अपने हाथों देने में था। गंगा का जल होने पर भी नल में से आने पर उसकी सार्थकता नहीं रहती।

फूल को अवज्ञा के साथ हटाते हुए नीरजा ने कहा—"जानती हो, इस फूल का दाम मार्केट में कितना है ? भिजवा दो वहीं। व्यर्थ नष्ट करने की दरकार क्या ?" बोलते-बोलते उसका गला भारी हो आया।

सरला ने व्यापार समझा। सोचा कि जवाब देने से आक्षेप का वेग बढ़ेगा ही, कम न होगा। चुप करके खड़ी रही। थोड़ी देर बाद नीरजा ने खामखा प्रश्न किया—"जानती हो इस फूल का नाम ?"

कहा होता नहीं जानती, किन्तु मालूम होता है, अभिमान पर घाव लगा। बोली— "एमारिलिस।"

नीरजा ने अन्याय ऊष्मा के साथ घुड़की दी—"खूब तो जानती हो तुम, उसका नाम है गान्डिफ्लोरा।"

सरला ने मृदु स्वर में कहा—"यही होगा।"

यही होगा माने क्या ? निश्चय ही यही है। कहना चाहती हो, मैं नहीं जानती ?"

सरला जानती थी कि नीरजा ने जान बूझकर गलत नाम देकर प्रतिवाद किया था, दूसरे को जलाकर अपनी ज्वाला बुझाने के लिये। चुपचाप हार मानकर धीरे-धीरे बाहर जाने को उद्यत थी, नीरजा फिर पुकार उठी—'सुने जाओ। क्या होता रहा, सबेरे से कहाँ रहीं ?"

"अरकिड के घर में।"

उत्तेजित होकर नीरजा बोली—अरकिड के घर में तुम्हारी बार-बार जाने की इतनी जरूरत क्या ?"

"पुराने अरकिड को चीरकर विभक्त करके नये अरकिड बनाने को आदित्य दादा मुझसे कह गये थे।"

नीरजा ने घुड़की के स्वर में कहा—"अनाड़ी की तरह सब नष्ट कर दोगी तुम। मैंने अपने हाथों हला माली को तैयार करना सिखाया है, उसको हुकुम देने से क्या वह न कर पाता ?"

इस पर जवाब चलता नहीं। इसका अटपट उत्तर यही था कि नीरजा के हाथ में हला माली का काम अच्छा चलता था, किन्तु सरला के हाथ में बिल्कुल ही नहीं चलता, यहाँ तक कि उदासीनता दिखाकर वह उसका अपमान करता है।

माली ने यह समझ लिया था कि इस अमल में ठीक तरह काम न करने से ही उस अमल की मालकिन खुश होगी। इस तरह जैसे कालेज बॉयकाट करके पास न होने का दाम डिग्री पाने से भी बड़ा हो गया है।

सरला क्रोध कर सकती थी, किन्तु उसने क्रोध किया नहीं। उसे पता था कि भाभी जी की भीतरी छाती 'ठनठन' करती है। निःसन्तान माँ के सम्पूर्ण हृदय को सान्त्वना देता है। जो बगीचा दस साल बाद आज इतने पास है तो भी इस बगीचे से उसका निर्वासन है। आँखों के सामने ही निष्ठुर विच्छेद !

नीरजा बोली—"बन्द कर दो इस खिड़की को।"

सरला ने बन्द करके कहा—"अब कमला नीबू का रस ले आती हूँ।"

"नहीं कुछ नहीं लाना होगा, अब जा सकती हो।"

सरला ने डरते-डरते कहा—"मकरध्वज खाने का समय हो गया है।"

"नहीं, जरूरत नहीं मकरध्वज की। तुम्हारे ऊपर बगीचे के और कोई काम की फरमाइश नहीं है क्या ?"

"गुलाब की डालियाँ पोतनी होंगी।"

नीरजा ने चुटकी लेते हुए कहा—"मालूम होता है, उसका यही वक्त है। उन्हें यह अक्ल किसने दी, सुनूँ तो।"

सरला ने मीठे स्वर में कहा—"देहातों से हठात् कई आर्डर आये देखकर किसी तरह इस बरसात के आगे ही बहुत झाड़ तैयार करने की उन्होंने ठानी है। मैंने मना किया था।"

"तुमने मना किया था, मालूम होता है। अच्छा-अच्छा हला माली को बुला दो।"

हला माली आया। नीरजा ने कहा—"बस हो गया। गुलाब की डालें पोतने को हाथ में कूची लिये है। दीदी मालकिन तेरी असिस्टेंट माली हैं क्या ?"

आज तेरी छुट्टी नहीं कहे देती हूँ। घास पत्तों के साथ बालू मिलाकर झील की दाहिनी तरफ जमीन तैयार कर। मन ही मन स्थिर करने लगी, यहीं पड़े-पड़े वह गुलाब के पौधे तैयार कर ही लेगा। हला माली की ओर निष्कृति नहीं।

हला हठात् प्रश्रय की हँसी भरे हुए मुँह से बोला—"भाभी जी, यह पीतल की एक कलशी है। करक के हरसुन्दर मायती की तैयार की हुई है। इस चीज का मूल्य तुम्हीं जान सकती हो। आपकी फूलदानी भला मनायेगी।"

नीरजा ने पूछा—"कितना दाम है इसका ?"

हला जीभ काटकर बोला—"ऐसी बात न कहिये। इस कलशी का फिर दाम लूँगा। मैं गरीब हूँ, फिर भी छोटा आदमी नहीं। आपका ही तो खा-पहिन कर आदमी बना हूँ।"

कलशी तिपाई के ऊपर रखकर दूसरी फूलदानो से फूल निकालकर सजाने लगा। बाद में जाने का रुख बताकर फिर कर खड़े होकर बोला—"आपको बता दूँ कि मेरी बहिन का विवाह है। बाजूबन्द की बात मत भूलना, भाभीजी। अगर पीतल के गहने दूँगा, आपकी निन्दा होगी। इतने बड़े घर का माली उसके घर में विवाह, देश तक के लोग देखने आयँगे।"

नीरजा बोली—"अच्छा तू डर मत। तू अभी जा।" हला चला गया। नीरजा हठात् पास ही फिर कर तकिये पर माथा रखकर गर्वित होकर बोली—"रोशनि-रोशनि, मैं हल्की हो गई हूँ, इसी हला माली की तरह हो गया है मेरा मन।"

आया बोली—"यह क्या बोलती है बेटी, छिःछिः।"

नीरजा आप ही बोलने लग गई—"मेरे फूटे कपाल ने मुझे बाहर से गिराया है, फिर भीतर से भी क्यों गिरा दिया ? क्या मैं जानती नहीं कि मुझे हला आज किन आँखों से देखता है ? मुझसे लगालगी करके हँसते-हँसते बख्शिश लेकर चला गया। उसे बुला दे। उसे खूब डाटूँगा। उसकी शैतानी मिटानी होगी।"

आया जब हला को बुलाने के लिये उठी, नीरजा बोली—"ठहर, ठहर, आज ठहर!"

३

कुछ देर के उपरान्त उसका चचेता देवर रमेन आकर बोला—"भाभी, दादा ने भेजा है। आज आफिस में काम अधिक है, होटल में खायेंगे। लौटने में देर होगी।"

नीरजा हँसकर बोली—"खबर देने का बहाना लेकर एक दौड़ लगाये निकल आये लालू! मालूम होता है, आफिस का बेहरा मर गया।"

"तुम्हारे पास आने के लिये तुम्हें छोड़कर और दूसरे बहाने की आवश्यकता किसे है, भाभी। इन दूल-पदों का दर्द बेहरा बेटा क्या समझेगा?"

"ओ! अनुपयुक्त स्थान में मिठास बिखेरना। कौन भूल से इस घर में चले आये। तुम्हारी मालिनी नीबू के कुंजवन में आज अकेली है। देख तो आओ जाकर।"

"आगे कुंजवन की वनलक्ष्मी के दर्शन कर लूँ, फिर जाऊँगा मालिनी के संन्धान में।" इतना कहकर उसने भीतर के पॉकेट से निकालकर एक कहानियों की पुस्तक नीरजा के हाथ पर धर दी।

नीरजा खुश होकर बोली—"धन्यवाद! यही पुस्तक तो चाहती थी। आशीर्वाद देती हूँ कि तुम्हारे मधुवन की मालिनी हँसी की कड़ियों में सदैव हृदय से बँधी रहे। वही जिसे तुम अपनी कल्पना-संगिनी कहते हो। है, तुम्हारी स्वप्न-संगिनी! वाह वाह ..."

रमेन हठात् बोला—"अच्छा भाभी, एक बात पूछता हूँ, ठीक उत्तर देना।"

"क्या बात?"

"सरला के साथ क्या आज तुम्हारा झगड़ा हो गया? कैसे, बोलो तो?"

"देखा है, झील के किनारे वह चुपचाप बैठी है। स्त्रियों की तो पुरुषों की तरह काम छोड़कर भागने की आदत नहीं होती। ऐसी बेकार अवस्था में सरला को मैंने कभी नहीं देखा। पूछा—"मन किस ओर है?" वह बोली—"उस ओर जिस ओर तप्त हवा शुष्क पत्रों को उड़ाये जाती है।" मैंने कहा—"यह हुई दिल्लगी। स्पष्ट भाषा में बातें करो।" वह बोली—

"सब बातों की भाषा होती है।" फिर दिल्लगी देखता हूँ। तब गीत की बोली ध्यान में आई—"किसके वचनों की यह वेदना?" "हैं तो तुम्हारे दादा के वचन।"

"हो ही नहीं सकता। दादा क्या आदमी हैं, वे तुम्हारे इन मालियों को डाँट-डपट सकते हैं। किन्तु "पुष्परा शाविवाग्निः" यह भी सम्भव है क्या?"

"अच्छा खटकने वाली बातें नहीं बकनी हैं। एक काम की बात कहती हूँ, मेरा अनुरोध रखना ही पड़ेगा। दोहाई तुम्हारी। तुम सरला से विवाह कर लो। विवाह योग्य कन्या के उद्धार करने से महा पुण्य होता है।"

"पुण्य का लोभ तो नहीं रखता, किन्तु इस कन्या का रखता हूँ। यह बात कहता हूँ तुमसे कसम खाकर।"

"यह होने से आपत्ति कहाँ है? क्या उसका मन नहीं है?"

"यह बात तो पूछी भी नहीं है। कहता हूँ न कि वह मेरी कल्पना की ही संगिनी होगी, संसार की संगिनी नहीं।"

हठात् तीव्र आग्रह के साथ नीरजा रमेन का हाथ दबोचते हुए बोली—"कैसे नहीं होगी, होना ही पड़ेगा। मरने से पहिले तुम्हारा विवाह देखूँगी ही, नहीं तो कहे देती हूँ, भूत होकर तुम लोगों को तंग करूँगी।"

नीरजा की व्यग्रता देखकर रमन विस्मित होकर कुछ क्षण उसके मुख की ओर देखता रहा। फिर माथा नीचे किये बोला—"भाभी, मैं नाते से छोटा हूँ, किन्तु आयु से बड़ा।"

हवा से उड़कर जब कोई बीज कहीं जम उठता है और उसके अंकुर फूट उठते हैं तब उसे उखाड़ने की किसी में सामर्थ्य नहीं होती।

"मुझे उपदेश न देना होगा। तुम्हारी गुरुजन मैं हूँ, तुम्हें उपदेश देती हूँ—विवाह करो। देर मत करो। इसी फाल्गुन महीने में। अच्छा दिन है।"

"मेरे पंचांग में तीन सौ पैंसठ दिन ही अच्छे दिन हैं। किन्तु यदि दिन हो भी तो रास्ता नहीं। मैं एक बार जेल हो आया हूँ। फिर भी अभी जेल के पथ की ओर हूँ। उस पथ पर प्रजापति के प्यादों की गति नहीं।"

'आजकल की स्त्रियाँ ही, मालूम होता है, जेलखाने से डरती हैं।"

"न डरें, किन्तु वह सप्तपदी गमन का रास्ता नहीं। उस रास्ते में स्त्री को साथ रखकर मन में रखने से बल मिलता है। रही चिरकाल मेरे मन में"

हार्लिक्स दूध का पात्र तिपाई पर रखकर सरला चली जा रही थी। नीरजा बोली—"जाना मत सुनो सरला, यह फोटोग्राफ किसका है? पहिचान सकती हो?"

सरला बोली—"वह तो मेरा है।"

"तुम्हारा बहुत दिन पहिले का चित्र है। तब का जब तुम्हारे बड़े चाचा के यहाँ तुम दोनों बगीचे में काम करते थे। देखकर मन में होता है, अवस्था पन्द्रह साल की रही होगी। मराठी स्त्रियों की भाँति फेंटा देकर ...ड़ी पहिनी हुई है।"

"तुम्हें कहाँ से मिल गया?"

देखा था उनके एक डेस्क में, तब अच्छी तरह लक्ष्य से देखा नहीं। ज वहाँ से ले आई हूँ। लालू, तब की सरला से अब की और सुन्दर खती है। तुम्हारा क्या ख्याल है?

रमेन बोला—"तब क्या कहीं कोई सरला थी? अन्ततः मैं तो उसे

जानता ही न था । मेरे सामने आज की ही सरला सत्य है, एकमात्र । तुलना किसके साथ करूँ।"

नीरजा बोली—"उसका आज का चेहरा हृदय में किसी रहस्य से गूढ़ होकर भर उठा है, जैसे कि कोई मेघ रहा हो स्वच्छ, उसके भीतर से आज श्रावण का जल 'झरझर' कर उठा हो—इसी को तुम लोग कहते हो रोमांटिक, न लालू ।"

सरला चले जाने को उद्यत हुई । नीरजा उससे बोली-"थोड़ा बैठो लालू, एक बार पुरुष की आँखें लेकर सरला को देखो तो सही । अच्छा बताओ सबसे पहिले उसका क्या आँखों में आता है ?

रमेन बोला—"सभी कुछ एक साथ ही ।"

"निश्चय ही उसकी दो आँखें कैसी गम्भीर होकर देखना जानती हैं । न, उठो नहीं सरला । और थोड़ा बैठो । उसकी देह भी है कैसी कटी-छँटी—।"

"तुम क्या उसे नीलाम करने को बैठ गई हो भाभी ? जानती हो कि यों ही मेरा उत्साह कुछ कम नहीं है ।"

नीरजा दलाली के उत्साह में बोली—"लालू, देखो सरला के दोनों हाथ जैसे बलिष्ठ वैसे ही सुडौल कोमल, वैसे ही उनका भी । ऐसे और देखे हैं ?"

रमेन हँसकर बोला—"और कहीं देखे हैं या नहीं; इसका उत्तर तुम्हें जरूर सुनाई पड़ेगा ।"

"ऐसे दो हाथों पर तो दावा नहीं करेगा ?"

"चिर दिन का दावा नहीं किया, क्षण-क्षण का दावा करे बैठा हूँ । तुम्हारे यहाँ जब चाय पीने आता हूँ तब चाय से अधिक कुछ " हूँ इन हाथों के गुण में । उस रस-ग्रहण में पाणिग्रहण का जितना भाग हो, अभागे के पक्ष में वही यथेष्ट है ।" दी में

सरला मोढ़ा छोड़कर उठ पड़ी । घर से बाहर होने का उपक्र

ही रमेन द्वार पर आगे होकर बोला—"एक वचन दो, तब राह दूँगा।"

"क्या कहते हो ?"

"आज है शुक्ला चतुर्दशी। मैं मुसाफिर आऊँगा तुम्हारे बगीचे में। बात यदि होगी भी तो कहने की आवश्यकता नहीं होगी। अकाल पड़ा है, पेट दिखाने से मिलेगा नहीं। हठात् , इस घर में मुष्टि-भिक्षा की भेंट—यह मंजूर नहीं। आज तुम्हारे वृक्ष की छाया में बैठकर अपने अतृप्त मन को भरना चाहता हूँ।"

सरला सहज स्वर में बोली—"अच्छा, आना तुम।"

"रमेन खाट की ओर लौटते हुए बोला—"तब आ जाऊँ भाभी।"

"और रहने की जरूरत क्या ? भाभी का जो कुछ काम था वह तो पूरा हो गया।"

रमेन चला गया।

४

रमेन के चले जाने पर नीरजा हाथों से मुँह छिपाये बिछौने में पड़ी रही। सोचने लगी, ऐसे ही मन-मत्त दिन उसके भी थे। कितनी वसन्त-ऋतु की रातों को उसने खाली किया था। संसार की बारह आना स्त्रियों की तरह क्या वह भी स्वामी की गृहस्थी की एक वस्तु थी ! बिछौने में पड़े-पड़े केवल याद आती है, कितने दिन उसके स्वामी ने उसकी अलकें पकड़कर खींचते हुए आर्द्र कण्ठ से कहा था—"मेरे रंगमहल की रानी !" दस साल में भी रंग थोड़ा भी म्लान नहीं हुआ था, प्याला भरा हुआ था। उसका स्वामी उससे कहता—"उन दिनों रमणी-चरण स्पर्श से अशोक फूलने लगता था, मुख-मद के छींटे पाकर वकुल प्रस्फुटित

होता था, पृथ्वी ने मेरे बगीचे को भी वही कालिदास-युग के दिन दिये हैं। रोज जिस पथ पर तुम्हारा पाँव पड़ता है, उसके दोनों ओर रँग-रँग के फूल झूम उठते हैं। वसन्त की वायु में मद बिखेर दिया है, गुलाब बन पर उसका नशा छा गया है।" बात-बात में वह कहता—तुम न होती तो इसी फूलों के स्वर्ग में वृत्रासुर होकर मशाले की दुकान जमाता। मेरे भाग्य-गुण से तुम हो नन्दन वन की इन्द्राणी! हाय रे, यौवन का तो आज भी अन्त नहीं हुआ, किन्तु चली गई उसकी महिमा। तभी तो इन्द्राणी अपने आसन को आज भर नहीं पाती। उस दिन उसके मन में कहीं क्या लेशमात्र भय था! वह जहाँ थी, वहाँ और कोई भी न था। अपने आकाश में वह थी प्रातःकाल के अरुणोदय की भाँति परिपूर्ण एक ही। आज कहीं एक छाया देखने से ही हृदय सिहर उठता है। अपने आप पर और विश्वास नहीं। नहीं तो क्या है यह सरला? किस पर है उसे गर्व? आज उसे लेकर ही सन्देह से मन हिल जाता है। कौन जानता था, समय के पूर्व ही भाग्य में इतना दैन्य घटित होगा। इतने दिन तक इतना सुख, इतना अजस्र गौरव देकर अन्त में विधाता ने इस प्रकार चोर की तरह सेंध काटकर दत्तापहरण कर लिया।"

"रोशनि, सुन जा!"

"क्या बेटी?"

"तेरे जमाई बाबू एक दिन मुझे बुलाते थे—'रंग महल की रंगिनी' कहकर। दस साल हुए हमारा विवाह हुए। वह रंग आज भी फीका नहीं पड़ा, किन्तु वह रंगमहल?"

"जायगा? कहाँ है तुम्हारा महल? कल तुम पूरी रात सोई नहीं। थोड़ी नींद लो तो, पाँव दबा दूँ।"

"रोशनि, आज तो पूर्णिमा की सन्निकटता है। ऐसी कितनी ज्योत्स्ना रातों में नहीं सोयी। दोनों ही बगीचे में घूमे हैं। वह स्थान

और यह स्थान। आज तो नींद आने से ही बचूँगी, किन्तु अभागी नींद तो आना नहीं चाहती।"

"थोड़ा चुप होकर रहो, नींद आप ही आयगी।"

"अच्छा, क्या वे लोग ज्योत्स्ना-रात्रि में बगीचे में घूमते हैं ?"

प्रातःकाल के चालान के लिये फूल काटते देखा था। घूमेंगे कब ? समय कहाँ !

"माली लोग आजकल खूब सोते हैं। ऐसा होने से जान बूझकर भी उन्हें कोई जगाता नहीं शायद।"

"जब तुम नहीं, उन्हें छूने की किसकी हिम्मत है ?"

"यह गाड़ी की आवाज सुनी न !"

"हाँ, बाबू की गाड़ी आ गई।"

"हाथ का आइना ला दे। फूलदानी से बड़ा गुलाब ले आ, देखूँ। सेफ्टीपिनों का डब्बा किधर है ? आज मेरा मुँह एकदम उतर-सा गया है। जा तू घर में से।"

"जाती हूँ, किन्तु दूध बार्ली पड़ा है, खा लो लक्ष्मी !"

"पड़ा रहे, नहीं खाऊँगी।"

"आज तुमसे दो घूँट दवा खाना भी न हुआ।"

"तुझे बकना नहीं है। कहती हूँ जा, यह खिड़की खोले जा।" आया चली गई।

'टन टन' करके तीन बजा। धूप का रंग आरक्त हो आया था। छाया पूर्व की ओर ढल पड़ी, दक्षिण से वायु बही, झील का जल झल-झला उठा। माली-गण काम में लगे थे। नीरजा दूर से जितना हो सकता, वही देखती।

आदित्य ने जल्दी-जल्दी कदम रखते हुए घर में प्रवेश किया। हाथ में थी बसन्ती रंग के देशी लावर्नम की जोड़ी पुष्प-मञ्जरी में। वही देकर नीरजा को पाँव के आस-पास ढँक दिया। बिछौने पर बैठते

ही उसका हाथ दबोचते हुए बोला—"आज कितने दिनों से तुम्हें नहीं देखा नीरू !" सुनकर नीरजा और न रुक सकी, फूट-फूट कर रो पड़ी। आदित्य ने खाट से उतर कर मेज पर कोहनी रखते हुए नीरजा का गला सम्हाला और उसके गीले कपोलों का चुम्बन करते हुए बोला—"अपने मन में निश्चय जानो, मेरा दोष नहीं था।"

"इतना निश्चय करके कैसे जानूँ, बोलो ! मेरे क्या और वे दिन हैं ?"

"दिनों की बात का हिसाब करने से क्या होगा ? तुम तो मेरी वही तुम हो।"

"आज मेरा जो है वह उसीसे डरता है। इस मन को और जोर नहीं मिलता।"

"थोड़ा भय करना अच्छा लगता है न ? खूँटकर मुझे थोड़ा उकसा देना चाहती हो। स्त्रियों की यह चतुराई स्वभाव-सिद्ध नहीं।"

"और भूल जाना पुरुषों का स्वभाव सिद्ध नहीं ?"

"भूलने की फुरसत कहाँ देती हो ?"

"कहो न कहो न, "निष्ठुर विधाता के शाप से यह लम्बी फुरसत दी है।"

"उल्टा कहती हो। सुख के दिनों में भूला जाता है, व्यथा के दिनों में नहीं।"

सच कहो' आज सवेरे तुम भूल कर नहीं चले गये ?"

"क्या कहती हो तुम ? चला जाना पड़ा, किन्तु जब तक लौट नहीं आया मन में चैन नहीं थी।"

"कैसे बैठे हो तुम ? अपने दोनों पाँव बिछौने पर रख लो।"

"बेड़ी डालना चाहती हो, कहीं भाग न जाऊँ।"

"हाँ बेड़ी डालना चाहती हूँ। जीवन-मरण में निःसन्देह तुम्हारे दोनों पाँव मेरे बन्धन में रहेंगे।"

"बीच-बीच में थोड़ा-थोड़ा सन्देह करती हो, जिससे आदर का स्वाद बढ़ जाता है।"

"नहीं, बिल्कुल सन्देह नहीं। थोड़ा भी नहीं तुम्हारे ऐसा स्वामी किस नारी ने पाया है? तुम पर भी सन्देह! मुझ को धिक्कार है!"

"ऐसा होने से मैं तुम पर सन्देह करूँगा, नहीं तो नाटक जमेगा नहीं।"

"हाँ करो, कोई डर नहीं। वह होगा प्रहसन।"

"कुछ भी कहो, किन्तु आज मुझ पर नाराज थीं।"

"वही बात फिर क्यों? सजा तुम्हें नहीं देनी होगी, उसमें ही है उसका दण्ड विधान।"

"दण्ड किसलिये? बीच-बीच में यदि रोष का ताप न दिखाई दें, तो समझना पड़ेगा कि प्रेम की नाड़ी छूट गई।"

"भूल से यदि किसी दिन तुम पर रोष कर बैठूँ तो निश्चय समझना कि वह मैं नहीं, मेरे ऊपर किसी अप देवता का असर है।"

"अप देवता हम सब का ही होता है, कभी-कभी अकारण प्रकट हो उठता है। जब सुबुद्धि आ जाती है, तो राम नाम लेते ही वह भाग जाता है।"

आया घर में आई। बोली—"जमाई बाबू, आज सवेरे से ही यह लड़की दूध नहीं पीती, दवा नहीं खाती, मालिश नहीं कराती। ऐसा करने से मेरी उसके साथ नहीं पटेगी।" कह कर 'हन हन' करके हाथ झुलाती हुई चली गई।

सुनते ही आदित्य उठकर खड़ा हो गया। बोला—"तो इस बार मैं रोष करूँ?"

"हाँ, करो, खूब रोष करो, जितना हो सके उतना रोष करो। अन्याय किया है मैंने, किन्तु क्षमा करो उसके बाद।"

आदित्य दरवाजे के पास जाकर पुकारने लगा—"सरला, सरला।"

सुनते ही नीरजा की प्रत्येक शिराएँ झन झन-सी कर उठीं। मालूम हुआ, काँटों की झाड़ी में हाथ पड़ गया। सरला घर में आई। आदित्य ने विरक्त होकर प्रश्न किया—"नीरू को आज दवा नहीं दी। सारे दिन कुछ खाने को भी नहीं दिया गया।" नीरजा बोल उठी—"उससे क्या बकते हो? उसका क्या दोष? मैंने ही अपनी जिद से नहीं खाई। मुझे बको न। सरला तुम जाओ। व्यर्थ खड़ी क्यों बकना सुनती हो?"

"जायगी क्या, दवा निकाल दो। हार्लिक्स मिल्क तैयार कर लाओ।"

"आहा! पूरे दिन उसे माली का काम कराके थकावट मारते हो। उस पर यह नर्स का काम? तुम्हारे मन में थोड़ी दया नहीं आती? आया को बुला लो न।"

"आया क्या यह सब काम ठीक तरह कर पायेगी?"

"भारी तो है काम! कर पायेगी। कहीं अच्छा कर पायेगी।"

"किन्तु"—

"किन्तु फिर किसलिये? आया! आया!!"

"इतनी उत्तेजित न होओ। कोई आपत्ति खड़ी हो जायगी, दीखता है।

"मैं आया को बुलाये देती हूँ"—कहकर सरला चली गई। नीरजा की बात का कोई प्रतिवाद करे यह उसके मुँह पर ही न आया। आदित्य को मन ही मन आश्चर्य हुआ। सोचने लगा कि सरला पर क्या सचमुच अन्याय होता है?

औषधि-पथ्य हो जाने पर आदित्य ने आया से कहा—"सरला दीदी को बुला दो।"

"बात-बात में सरला दीदी केवल बेचारी को हैरान कर डालोगी, मालूम होता है।"

"काम की बात है।"

"रहने दो अभी काम की बात।"

"बहुत देर नहीं लगेगी।"

"सरला है स्त्री, उसके साथ काम की इतनी क्या बातें? उसके बदले हला माली को बुला लो।"

"तुमसे विवाह करने के बाद से इस एक बात का आविष्कार किया है कि काम की स्त्रियाँ ही होती हैं, पुरुष होते हैं निकम्मी हड्डी के। हम लोग काम करते हैं जबरन, तुम लोग करतीं प्राणों के उत्साह से। इस सम्बन्ध में एक थीसिस लिखने की सोच रखी है। मेरी डायरी में विस्तार रूप से उदाहरण मिलेंगे।"

"उसी स्त्री को जिस विधाता ने उसके प्राण के कार्य से वंचित कर दिया हो क्या कहकर निन्दित किया जाय। भूकम्प से हिल-डुल होकर आज मेरे काम का मुकुट गिरकर टूट गया है। यही कारण है कि इस घर में भूतों का डेरा बन गया।"

सरला आई। आदित्य ने पूछा—"अरकिड के घर का सब काम हो गया?"

"हाँ, हो गया।"

"सब?"

"हाँ सभी।"

"और गुलाब की कटिंग?"

"माली उसकी जमीन तैयार करता है।"

"जमीन! उसे तो मैंने आगे ही तैयार करके रखा है। हला माली के ऊपर भार दिया है। तब तो—

बात में एकाएक बाधा देते हुए नीरजा बोली—"सरला, जाओ तो, कमला नीबू का रस निकाल कर ले आओ। उसमें थोड़ा अदरख का रस डालना और शहद।"

सरला माथा नीचा किये घर से बाहर चली गई।

नीरजा ने पूछा—"आज तुम प्रातःकाल उठे थे ? जैसे हमलोग रोज उठते थे ।"

"हाँ, उठा था ।"

"घड़ी में उसी तरह एलार्म दिया हुआ था ?"

"था तो, क्यों ?"

"उसी नीम के वृक्ष के नीचे वही भाड़ की कटी पिंड़ । उसी पर चाय का सरञ्जाम । सब ठीक रखा था वासू ने ?"

"रखा था । नहीं तो अपराध के लिए नालिश रुजू करता तुम्हारी अदालत में ।"

"दोनों कुर्सियाँ डाली गईं थीं ?"

"वैसे ही पहिले की तरह डाली गईं थीं और वही नीली धारी दिया हुआ वसंती रंग की चाय का सरञ्जाम था । चाँदी का दूध का जग, छोटी सफेद पत्थर की कटोरी में चीनी और ड्रेगान-अंकित जापानी ट्रे ।"

"दूसरी कुर्सी क्यों खाली रखी ?"

"इच्छा से नहीं रखी । गिनती करने से आकाश में तारागण तो सब ठीक थे, केवल शुक्ल पंचमी का चाँद दिगन्त से बाहर था । सुयोग होने से उसे पकड़ कर ले आता ।"

"सरला को क्यों अपनी चाय की टेबिल पर नहीं बुलाते ?"

इसके उत्तर में कहा होता—"तुम्हारे आसन पर और किसी को बुलाने का मन नहीं होता ।" यह न कहकर सत्यवादी ने कहा—"प्रातः काल मालूम होता है, वह कुछ जप-तप करती है, मेरी तरह भजन-पूजन हीन म्लेच्छ वह नहीं है ।"

"चाय के पश्चात् शायद आज उसे आर्किड घर में ले गये थे ?"

"हाँ, कुछ काम था, उसे समझाकर दूकान जाना पड़ा ।"

"अच्छा एक बात पूछती हूँ, सरला के साथ रमेन का विवाह क्यों नहीं कर देते ?"

"क्या पात्र-पात्री जुटाना मेरा व्यवसाय है ?"

"नहीं, हँसी नहीं। विवाह तो करना ही होगा, रमेन जैसा पात्र कहाँ मिलेगा ?"

"एक ओर पात्र है और एक ओर है पात्री भी। बीच में मन है कि नहीं, यह पता लगाने की फ़ुरसत नहीं मिली। दूर से ही मन में यहाँ भय का आभास होता है।"

नीरजा थोड़ा झनक कर बोली—"कोई खटका न होता, यदि तुम्हारा सचमुच आग्रह होता।"

"विवाह करेगा एक पक्ष और यथार्थ आग्रह हो अकेला मेरा, इससे क्या काम चलेगा ? तुम प्रयत्न करके देखो न।"

"कुछ दिन के लिये पेड़ पौधों से उस लड़की की दृष्टि को छुट्टी दे दो। आप ही ठीक जगह पर नजर जा पड़ेगी।"

"शुभ दृष्टि के प्रकाश में पेड़ पौधे पहाड़-पर्वत सब स्वच्छ हो उठते हैं, वह है एक तरह की एक्सरे ! और क्या ?"

"व्यर्थ बकते हो। असली बात है, तुम्हारी इच्छा नहीं कि विवाह हो।"

"अब समझा ठीक इतनी देर में। सरला के जाने से मेरे बगीचे की क्या दशा होगी, कहो तो। लाभ-हानि की बात भी तो सोचनी होगी। ऐं, यह क्या, हठात् तुम्हारी व्यथा बढ़ उठी क्या ?"

आदित्य उद्विग्न हो उठा। नीरजा रुद्ध कण्ठ से बोली—"कुछ नहीं हुआ। मेरे लिये तुम्हें इतना अधिक व्यस्त होने की जरूरत नहीं।"

स्वामी के उठते-उठते वह बोली—"हमारे विवाह के पश्चात् ही इस आर्किड के घर को रूप मिला, इस बात को न भूल जाओ। उसके बाद रोज-रोज हम दोनों मिलकर उस घर को सजाया है। उसको नष्ट कराने में तुम्हें दर्द नहीं होता ?"

आदित्य विस्मित होकर बोला—"यह कैसी बात ? मेरी नष्ट करने की सलाह कहाँ देखी ?"

नीरजा उत्तेजित होकर बोली—"सरला क्या जानती है फूल बगीचे के सम्बन्ध में ?"

"क्या कहती हो ? सरला जानती नहीं ? जिन मौसा महोदय के घर में मैं मनुष्य हुआ हूँ वे थे सरला के बड़े चाचा। तुम जानती हो कि उनके बगीचे को मैंने बनाया है। बड़े चाचाजी कहते थे कि फूल के बगीचे का काम और गायों को दुहना स्त्रियों का ही काम है। उनके सब कामों में वह थी उनकी संगिनी।"

"और तुम थे संगी।"

"था ही। किन्तु मुझे करनी पड़ती थी कालेज की पढ़ाई। उसकी तरह उतना समय न दे पाता था। उसे मौसा जी स्वयं पढ़ाते थे।"

"उस बगीचे को लेकर तुम्हारे मौसा जी का सर्वनाश हो गया। ऐसा है उस लड़की का पाँव। मुझे तो वही डर है। कुलक्षणा लड़की ! देखो न मैदान-सा माथा घोड़ी की-सी लचकती हुई चाल। स्त्रियों के लिये पुरुषों-की-सी बुद्धि अच्छी नहीं। उससे होता है अकल्याण।"

"तुम्हें आज क्या हो गया है नीरू, कहो तो ? क्या कहती हो ? मौसा जी बगीचा ही बनाना जानते थे, व्यवसाय करना नहीं। फूलों की खेती करने में वे थे अद्वितीय, अपना नुकसान करने में भी उनका कोई समकक्ष न था। सब के आगे वे नाम पाते थे, दाम नहीं पाते थे। उन्होंने बगीचा बनाने के लिये जब मुझे मूलधन के रुपये दिये थे तब मैं क्या जानता था कि उनकी पूँजी डूब चुकी है। मुझे एक मात्र सान्त्वना यही है कि उनके देहान्त के पूर्व ही सब पटा दिया है।"

सरला कमला नीबू का रस लेकर आई। नीरजा बोली—"यहाँ रख जाओ।" रखकर सरला चली गई। पात्र पड़ा रहा, उसको उसने छुआ भी नहीं।

"सरला से तुमने क्यों नहीं विवाह किया ?"

"सुनो एक बार । वाद-विवाद की बात कभी मन में भी नहीं आई।"

"मन में भी नहीं आई ? यह मालूम होता है तुम्हारा कवित्व ।"

"जीवन में कवित्व की महिमा उस दिन देखी जिस दिन तुम्हें देखा । इसके पहिले हम दोनों वन–मनुष्यों ने वन की छाया में दिन काटे हैं । मैं था अपनी ही भूल में । वर्तमान अमल की सभ्यता में यदि मनुष्य हुआ होता तो न जाने क्या हुआ होता, कहा नहीं जा सकता ।"

"क्यों सभ्यता का क्या अपराध ?"

"आज की सभ्यता दुश्शासन की तरह हृदय का वस्त्र अपहरण करना चाहती है । अनुभव करने के पहिले ही आँखों में अंगुली देकर सयाना बना देती हूँ । गन्ध का संकेत ही उसके पक्ष में अत्यन्त सूक्ष्म है । पंखुड़ियाँ झरने पर खबर लेती है ।"

"सरला देखने में बुरी तो नहीं है ।"

"सरला को सरला कहकर ही जानता था । वह देखने में अच्छी है या बुरी यह तत्व सम्पूर्ण बाहुल्य था ।"

"अच्छा, सच कहो तुम उसे प्यार नहीं करते थे ?"

"अवश्य प्यार करता था । क्या मैं जड़ पदार्थ हूँ जो उसे प्यार न करूँ ? मौसाजी का बेटा रंगून में बैरिस्टरी करता है, उसका कोई ख्याल न था । उनका बगीचा लेकर रहेगी सरला, यही थी उनके जीवन की साध । यहाँ तक उनका विश्वास था कि यही बगीचा उसके सम्पूर्ण मन-प्राण पर अधिकार कर लेगा । उसके विवाह की आवश्यकता नहीं होगी । इसके बाद वे चल बसे । सरला हो गई अनाथा । बगीचा बिक गया महाजनों के हाथ । उस दिन मेरा कलेजा फट गया था । क्या तुमने नहीं देखा ? वह क्या प्यार की वस्तु है, प्यार नहीं करूँगा उसे ? याद है, सरला का मुँह एक दिन हँसी-खुशी से भरा हुआ था । मन को लगता था कि उसके पाँवों की चाल में पक्षियों की उड़ान है । आज वह चलती

है हृदय-भर बोझ लिये लिये, तब भी चूर हो गिर नहीं पड़ती। एक दिन भी मेरे सामने दीर्घनिःश्वास नहीं निकाला। अपने आपको उसके लिये अवकाश भी नहीं दिया।"

आदित्य की बात को दबाते हुए नीरजा बोली—"ठहरो, तनिक ठहरो, बहुत सुना है उसके सम्बन्ध में। तुमसे और कहने की जरूरत नहीं। असाधारण लड़की है। इसीलिये तो कहती हूँ कि उसको बारासत के लड़कियों के स्कूल में हेड मिस्ट्रेस बना दो। उन लोगों ने कई बार प्रयत्न भी तो किया है।"

"बारासत का लड़कियों का स्कूल? क्यों अण्डमान भी तो है।

"नहीं, हँसी नहीं। सरला को अपने बगीचे का और जो काम हो देना, किन्तु अरकिड घर का काम नहीं दे पाओगे।"

"क्यों क्या हो गया?"

मैं तुमसे कहे देती हूँ, सरला अरकिड को अच्छी तरह नहीं समझती।"

"मैं भी तुमसे कहता हूँ, सरला मुझसे कहीं अच्छा समझती है। मौसाजी की विशेष लगन थी अरकिड से। उन्होंने अपने आदमी भिजवाकर सेलीबस, जावा यहाँ तक कि चीन से भी अरकिड मँगवाये थे, उनका दर्द समझने वाला तब कोई न था।"

नीरजा यह जानती थी, इसीलिये बात उसे असह्य थी।

"अच्छा, अच्छा, बहुत खूब वह न हो तो मुझसे भी अधिक समझती है, यहाँ तक कि तुमसे भी अधिक। यह होने दो, फिर भी कहती हूँ कि यह अरकिड का घर केवल तुम्हारा-हमारा है, वहाँ सरला का कोई अधिकार नहीं। अपना पूरा बगीचा उसे दे डालो। यदि तुम्हारी ऐसी इच्छा हो तो, केवल थोड़ा कुछ बचाकर रखना हो तो रखना, केवल मेरा उत्सर्ग इतने दिन बाद अन्ततः इतना ही दावा कर सकता है। भाग्य के दोष से ही न आज मैं बिछौने में पड़ी हूँ, इसीलिये"—बात पूरी न कर सकी, तकिये में मुह छीपाकर अशान्त होकर रो पड़ी।

आदित्य स्तम्भित हो गया। ठीक उसी प्रकार जैसे इतने दिन स्वप्न में रहा हो, ठोकर खाकर चकरा उठा हो। यह क्या व्यापार! समझ गया यह रोना अनेक दिन का है। वेदना की वायु नीरजा के भीतर-भीतर दिन पर दिन वेग प्राप्त करके उठती रही। आदित्य क्षण भर के लिये भी न जान सका। इतना निर्बोध कि सोचता रहा, सरला के बगीचे के यत्न कर सकने से नीरजा खुशी है। विशेषतः ऋतु का हिसाब करके चुने हुए फूलों की क्यारी सजाने में वह अद्वितीय है। आज हठात् याद आयी, एक दिन जब किसी उपलक्ष्य में सरला की प्रशंसा करते हुए उसने कहा था—"कामिनी का बेड़ा ऐसी सतर्कता से मैं न लगा पाता।" तब तीव्र हँसी से नीरजा ने कहा था—"ओ महाशय! उचित प्राप्य से अधिक देने पर अन्त में मनुष्य को नुकसान उठाना पड़ता है।" आदित्य को आज स्मरण हुआ, पेड़-पौधों के सम्बन्ध में किसी प्रकार सरला की यदि कोई भूल पकड़ पाती तो नीरजा उच्च हास्य करके बात को बार-बार मुखरित किया करती थी। स्पष्ट स्मरण हुआ—अंग्रेजी की पुस्तकें छान-छान कर नीरजा अल्प परिचित फूलों के उद्भट नाम मुखस्थ करके रखती थी; भले मनुष्य की तरह सरला से पूछती और जब वह भूल करती तो उसकी हँसी की हिल्लोल रुकना भी न चाहती थी—"भारी पण्डित, कौन नहीं जानता उसका नाम क्यासिया जामानिका। हमारा हला माली भी कह लेता है।"

आदित्य अनेक क्षण तक बैठा सोचता रहा। फिर हाथ पकड़ कर बोला—"रोओ न नीरू, बोलो क्या करूँ? तुम क्या चाहती हो कि सरला को बगीचे के काम पर न रखूँ?"

नीरजा हाथ छुड़ाकर बोली—"कुछ नहीं चाहती, कुछ भी नहीं, वह तो तुम्हारा बगीचा है। तुम्हारी खुशी जिसे चाहो, रख सकते हो। मुझे इससे क्या?"

"नीरू, इस तरह तुम कह सकीं, बगीचा मेरा ही है, तुम्हारा नहीं ? हमारे बीच में यह भाग कब से हो गया ?"

"जब से तुम्हारा संसार का सब कुछ और मेरा हो गया इस घर का एक कोना। अपने ये बिखरे प्राण लेकर किसके बल पर खड़ी होऊँगी। तुम्हारी इस चमत्कारमयी सरला के सामने ? मुझमें आज वह शक्ति कहाँ कि तुम्हारी सेवा करूँ, तुम्हारे बगीचे का काम करूँ ?"

"नीरू, तुम्हीं तो इसके कई दिन आगे सरला को स्वयं बुला चुकी हो, उसका परामर्श लेती थीं। याद नहीं है कि अभी कुछ वर्ष पहिले तुम दोनों ने बाताबी नीबू के साथ कलम्बा नीबू की कलम बाँधी थी, मुझे अचम्भित कर देने के लिये ही।"

"तब तो उसमें इतना गर्व नहीं था। विधाता ने आज मेरी ओर अन्धकार कर दिया। तभी तो तुम्हें एकाएक मालूम पड़ गया, वह इतना जानती है, वह उतना जानती है, अरकिड को पहिचानने में मैं उसके बराबर नहीं। तब तो ये सब बातें किसी भी दिन नहीं सुनीं। फिर क्यों आज मेरे इस दुर्भाग्य के दिन में दोनों की तुलना करने आ गये ? उसकी बराबरी मैं आज कैसे कर सकूँगी ? क्या लेकर माप में समान होऊँगी।"

"नीरू, तुमसे आज जो यह सब सुना इसके लिये बिल्कुल प्रस्तुत न था। मन में होता है कि ये मेरी नीरू की बातें नहीं, किसी और की हैं।"

"नहीं, नहीं वही नीरू है। उसकी बातें तुमने इतने दिन में भी नहीं समझीं। इसी का तो मुझे सबसे ज्यादा खेद है। विवाह के उपरान्त जिस दिन से मैंने जाना कि अपना बगीचा तुम्हें प्राणों से प्यारा है, उस दिन से इस बगीचे और अपने बीच में थोड़ा भी भेद नहीं रखा। नहीं तो तुम्हारे बगीचे से मेरा होता बड़ा झगड़ा। वह मुझे असह्य होता। वह होता मेरी सौत। तुम तो जानते हो मेरी दिन रात की साधना।

जानते हो किस तरह उसे अपने में मिला लिया है। उसके साथ एक, हम एक हो गई हूँ।"

"जानता तो हूँ। मेरे सर्वस्व को पाकर ही तो तुम हो।"

"रहने दो वह बात। आज देखा कि इस बगीचे में अनायास ही एक जन और घँस आया। कहीं थोड़ी भी व्यथा नहीं हुई। मेरे शरीर को चीर डालने की सोच पाते, उसमें किसी और के प्राण ठूँस देने के लिये! मेरा यह बगीचा क्या मेरा शरीर नहीं है? मैं होती तो ऐसा होने देती?"

"तुम क्या करतीं?"

"कहूँ क्या करती? बगीचा छार-खार हो जाता होता। व्यवसाय में दिवाला होता। एक की जगह दस माली रखती, किन्तु और किसी लड़की को न आने देती। विशेषतः ऐसी किसी को जिसके मन में गर्व है कि वह मुझसे भी अच्छा बगीचे का काम जानती है। उसका यह अहंकार लेकर तुम प्रतिदिन मेरा अपमान करोगे। आज जब मरने बैठी हूँ तब अपनी शक्ति प्रमाणित करने का उपाय नहीं। ऐसा कैसे हो सका, कहूँ?"

"कहो।"

"तुम्हारे, उसे मुझसे अधिक प्यार करने से। इतने दिन तक यह बात छिपाये रहे।"

आदित्य कुछ क्षण तक सिर के बालों में हाथ उलझाये बैठा रहा। फिर विह्वल कण्ठ से बोला—"नीरू, दस साल से तुम मुझे जानती हो, सुख में दुःख में अनेक अवस्थाओं में, अनेक कामों में, उस पर भी यदि तुम आज यह कह सकती हो तो मैं कोई उत्तर नहीं दूँगा। मैं चला। पास रहने से तुम्हारा शरीर खराब होगा। फरनारी के पास जो जापानी घर है, उसी में रहूँगा। जब मेरी ज़रूरत हो, बुलवा लेना।"

५

नहर के उस पार के बाँध पर से च्यालता वृक्षों की ओट में चाँद उठ रहा है, जल में पड़ती है, घन-काली छाया। इस पार वासन्ती वृक्ष में शिशु की निद्रा-भंग आँखों की तरह रंगे कच्चे पत्ते, एवं कच्चे सोने के वर्ण के फूल, निविड़ गन्ध भारी होकर जम उठी है, गन्ध हो, मानो कुहरा। जारुल वृक्षों की डालों पर जोनाकी-दल झलमल कर रहा है। सीढ़ी बँधे हुए घाट की वेदी पर स्तब्ध बैठी है, सरला। कहीं वायु नहीं, पत्तों में कम्पन नहीं, जल मानो हो काली छाया के फ्रेम में बँधा हुआ, पालिश किया रजत-दर्पण।

पीछे की ओर से प्रश्न आया—"आ सकता हूँ, क्या ?" सरला ने स्निग्ध कण्ठ से उत्तर दिया—"आओ।" रमेन बैठ गया घाट की सीढ़ियों पर पाँवों के पास। सरला, व्यस्त हो उठी—"कहाँ बैठ गये, रमेन दादा ! ऊपर आओ।"

रमेन बोला—"जानती हो, देवियों के वर्णन का आरम्भ पद पल्लव से होता है। पास स्थान होगा तो बाद में बैठ जाऊँगा। दो अपने हाथ, अभ्यर्थना आरम्भ करूँ, विलायती की भाँति।"

सरला को हाथ लेकर चुम्बन किया। बोला—"साम्राज्ञी का अभिवादन ग्रहण करो।"

तत्पश्चात् उठकर खड़े होते हुए थोड़ी सी अबीर लेकर उसके कपाल पर लगा दी।

"यह फिर और क्या ?"

"जानती नहीं, आज है, दोल पूर्णिमा। तुम्हारे वृक्ष-वृक्ष डाल-डाल पर है, रंग का छिड़काव। वसन्त में मनुष्य के शरीर में तो रंग लगता नहीं, लगता है उसके मन में। उस रंग को बाहर प्रकट करना होगा नहीं तो, वनलक्ष्मी, अशोक वन में तुम निर्वासित होकर रहोगी।"

"तुम्हारे साथ बातों से खेलूँ, इतनी क्षमता नहीं है मुझ में।"

"बातों की आवश्यकता क्या? पुरुष-पक्षी गाता है, तुम स्त्री-पक्षी के चुप होकर सुनने से उत्तर देना हो गया। इस बार पास बैठने दो।"

पास आकर बैठ गया। दोनों ही अनेक क्षण चुप होकर रहे। हठात् सरला ने प्रश्न किया—"रमेन दादा, क्या करके जेल जाना होता है, मुझे परामर्श दो।"

"जेल जाने के रास्ते इतने अनगिनती और आजकल इतने सहज हैं कि क्या करने से जेल न जाना पड़ेगा, यही परामर्श के लिये कठिन हो उठा है। इस युग में गोरों की वंशी घर में नहीं टिकने देती।"

"नहीं, मैं हँसी नहीं करती। खूब सोचकर देखा है, मेरी मुक्ति वहीं है।"

"खूब खोलकर कहो अपने मन की बात।"

"सब बातें कहती हूँ। सब समझ सकते, यदि आदित्य दादा का मुँह देखने को पाते।"

"आभास से कुछ देखा है।"

"आज सन्ध्या के समय में, बरामदे में अकेली थी। अमेरिका से फूल-पौधों का सचित्र केटलॉग आया है। पृष्ठ उलट कर देख रही थी। रोज साढ़े चार के भीतर चाय पीकर बगीचे के काम के लिये आदित्य दादा मुझे बुला लिया करते थे। आज देखा अन्य मन से व्यस्त होकर टहल रहे थे। माली काम करने को जाते हैं, ताक कर भी नहीं देखा। मन में आया कि मेरे बरामदे की ओर आयेंगे, किन्तु द्विधा करके लौट गये। ऐसा कठोर मनुष्य, जोर की चाल, जोर से काम। सब तरफ सजग दृष्टि, कठोर शासक, फिर भी मुँह पर क्षमा की हँसी। आज उस मनुष्य में वह चाल नहीं, बाहर की ओर दृष्टि नहीं, मन के भीतर ही भीतर कहीं डूबा है। अनेक क्षण के बाद धीरे-धीरे पास आये। और दिन होने से उस समय घड़ी देखकर बोल उठते थे—"समय हो गया" मैं भी उठ

पड़ती थी। आज वैसा न बोलकर धीरे-धीरे कुर्सी खींचकर समीप बैठ गये। बोले—"मालूम पड़ता है, केटलॉग देख रही हो।" मेरे हाथ से केटलॉग लेकर पृष्ठ उलटने लगे। कुछ देखा हो, समझ में न आया। हठात् एक बार मेरे मुँह की ओर देखने लग गये, मानो निश्चय किया कि बिना विलम्ब किये ही कुछ कहना चाहिये। तब फिर पृष्ठों की ओर दृष्टि किये किये बोले—"देखा सरि, कितना बड़ा नेस्टार्शियम है!" कण्ठ में थी गम्भीर क्लान्ति। फिर बहुत चण तक बात नहीं की, पृष्ठ उलटाना चलता रहता। फिर हठात् एक बार मेरे मुँह की ओर देखा, देखने ही 'धप' करके किताब बन्द करके मेरी गोद में फेंकते हुए उठ खड़े हुए। मैंने कहा—"बगीचे नहीं जाँयगे?" आदित्य दादा बोले—"नहीं भाई, बाहर टहलूँगा, काम है।" कहकर अपने आपको छुड़ाते-से शीघ्र ही चले गये। "आदित्य दादा तुमसे क्या कहने आये थे, क्या अन्दाज करती हो तुम?"

"कहने आये थे कि तुम्हारा एक बगीचा आगे ही नष्ट हो गया, इस बार हुकूम आया तुम्हारे माथे पर और एक बगीचा नष्ट होगा।"

"यदि यही हुआ सरि, तो फिर मुझे जेल जाने की स्वाधीनता नहीं रहेगी।"

सरला म्लान हँसकर बोली—"तुम्हारा वह रास्ता क्या मैं बन्द कर सकती हूँ। सम्राट बहादुर स्वयं खुला हुआ रखेंगे।"

"तुम कर्तव्य च्युत होकर राह में पड़ी रहोगी, और मैं बेड़ी की झंकार करता चमकता हुआ जाऊँगा जेलखाने को। क्या कभी यह हो सकता है? ऐसा होने से मुझे अभी से इसी अवस्था में भला आदमी होना सिखाना होगा।"

"क्या करोगे तुम?"

"तुम्हारे अशुभ ग्रहों के साथ युद्ध घोषणा कर दूँगा। .... फिर मिलेगी लम्बी छुट्टी, यहाँ तक कि काले पानी के पार तक।"

"तुमसे कभी कुछ छिपा नहीं पाती। कुछ दिन से मेरे आगे एक बात स्पष्ट हो उठी है। आज तुमसे उसे कहूँगी, कुछ ध्यान में न लाना।"

"न कहने से ध्यान में लाऊँगा।"

"बचपन से ही आदित्य दादा के साथ एक ही ठिकाने मनुष्य हुई। भाई-बहिन की तरह नहीं, दो भाइयों की ही तरह दोनों ही अपने हाथों से पास-पास मिट्टी खोदते थे, झाड़ काटते थे। बड़ी चाची और माँ दो-तीन दिन के अन्तर से मरी थीं, टाइफाइड से। तब मेरी आयु थी छः साल। पिताजी की मृत्यु हुई उसके दो साल बाद। बड़े चाची जी की बड़ी साध थी कि मैं अपने प्राण देकर भी उनके बगीचे को बचा रखूँगी। उसी तरह उन्होंने मुझे तैयार भी किया था। वे किसी पर अविश्वास करना नहीं जानते थे। जिन मित्रों को उन्होंने रुपये उधार दिये थे वे कर्ज पटाकर बगीचे को रहन-मुक्त करा देंगे, इसमें उन्हें सन्देह नहीं था। शोध किया केवल आदित्य दादा ने और किसी ने भी नहीं। वह इतिहास शायद तुम कुछ-कुछ जानते हो, किन्तु फिर भी आज सब बातें शुरू से ही कहने की इच्छा होती है।"

"मुझे सब बिल्कुल नया लगता है।"

"तदुपरान्त जानते हो, सब एकाएक डूब गया। जब नाव धार से किनारे पर आ लगी तब एक बार फिर मेरा भाग्य आदित्य दादा के पास आ टिका। वैसे ही मिले—हम दोनों भाई हैं, दोनों हैं, दो मित्र। तब से आदित्य दादा के आश्रय में मैं हूँ। यह जितना सत्य है उतना ही यह भी सत्य है कि उन्हें भी मैंने आश्रय दिया। परिमाण में मेरी ओर से कमी नहीं हुई यह मैं दावे से कहूँगी। इसीलिये संकोच करने का मेरे पक्ष में थोड़ा भी कारण नहीं हुआ। इसके आगे जब हम दोनों एक जगह थे और तब जो मेरी अवस्था थी, वही अवस्था लेकर लौटी

वही सम्बन्ध लिये हुए। वैसा ही चिर दिन चलता भी जाता। और बोलने से क्या होगा ?"

"बात पूरी कर डालो।"

"हठात् मुझे धक्का मार कर क्यों जता दिया कि मेरी उमर हो आई है ? जिस दिन की ओट में एक साथ काम करते थे, उस दिन का आवरण एक मुहूर्त्त में ही उड़ गया। तुम यह सब निश्चय जानो रमेन दादा ! तुम्हारी आँखों से मेरा कुछ भी नहीं छिपा है। अपने ऊपर भाभी का प्रथम प्रथम रोष देखकर आश्चर्य हुआ। कुछ भी न समझ सकी। इतने दिन अपने ऊपर दृष्टि न पड़ी, भाभी के विराग-अंगारों की आभा में अपने आपको पाया, आप ही अपने द्वारा पकड़ गई। मेरी बात समझ रहे हो क्या ?"

"तुम्हारा बचपन की तली में दबा हुआ प्रेम आलोड़ित होकर ऊपर आकर छलछला उठा है।"

"मैं क्या करूँ, कहो ? अपने समीप से स्वयं कैसे दूर भाग जाऊँगी ?" कहते-कहते रमेन का हाथ पकड़ लिया।

रमेन चुप रहा। फिर वह बोली—"जब तक मैं यहाँ हूँ, मेरी ओर से अन्याय बढ़ता ही रहेगा।"

"अन्याय किसके ऊपर ?"

"भाभी के ऊपर ?"

"देखो सरला, मैं पोथियों की उन सब बातों को नहीं मानता। दावे का हिसाब किस सत्य को लेकर सोचना होगा ? तुम्हारा मिलन है कितने दिन का; तब कहाँ थी भाभी ?"

"क्या कहते हो, रमेन दादा। अपनी इच्छा की दोहाई देकर यह अन्याय न करना होगा। आदित्य दादा की बात भी तो सोचनी होगी।"

"सोचना होगा। तुम क्या समझती हो कि जिस आघात से तुम्हें ठेस लगी है, वह आघात उन्हें नहीं लगा ?"

"रमेन है क्या ?" पीछे से सुना गया।

"हाँ दादा।" रमेन उठ पड़ा।

"तुम्हारी भाभी ने तुम्हें बुलाया है, आया आकर यह कह गई है।"

"रमन चला गया। सरला ने भी उठकर जाने का उपक्रम किया।

आदित्य बोला- "जाओ न सरि, थोड़ा बैठो।"

आदित्य का मुख देखकर सरला का हृदय फट जाना चाहता था। यह अविश्राम कर्म-रत अपने आप में भूला हुआ मनुष्य थपेड़े खाकर पाल टूटी हुई नौका की तरह डगमग हो उठा था।

आदित्य बोला—"हम दोनों ने इस संसार में एक बार एक होकर जीवन का आरम्भ किया था। हमारा मिलन इतना सरल था कि उसके बीच में कभी किसी कारण से भद हो जाने को ध्यान में लाना असम्भव-सा था। क्यों न सरि ?"

"जो अंकुर में एक होते हैं, बड़े होने पर उनका भाग हो जाता है, यह बात न मानने से तो रहने की जगह नहीं, आदित्य दादा।"

"वह भाग तो बाहर ही होते हैं, केवल आँखों में देखने के भाग। अन्तर में प्राणों का भाग तो होता नहीं। आज तुम्हें अपने समीप से अलग करने का धक्का लगा है। यह मुझे इतना अखरेगा यह मैंने कभी सोचा भी न था। सरि, क्या तुम जानती हो कि मेरे ऊपर हठात् क्या धक्का आया ?"

"जानती हूँ, भाई।"

"सह सकोगी सरि ?"

"सहना ही होगा।"

"स्त्रियों में सहन करने की शक्ति क्या हम लोगों से अधिक होती है, यह सोच रहा हूँ।"

तुम पुरुष लोग दुःखों के साथ संग्राम करते हो, स्त्रियाँ युग-युग केवल दुःख ही सह करती हैं। आँखों का जल और धर्म इन्हें छोड़कर

उनका और कोई सहारा नहीं ।"

"तुम्हें मुझसे कोई छीन ले जाये, यह मैं होने न दूँगा—नहीं होने दूँगा । यह अन्याय है, यह निष्ठुर अन्याय !"—कहकर मुट्ठियों को कड़ी करके आकाश के किसी अदृश्य शत्रु से संग्राम करने को प्रस्तुत हो उठा ।

सरला आदित्य का हाथ अपनी गोद में रखकर उसे धीरे धीरे अपने हाथ से सहलाने लगी । धीरे-धीरे मानो अपने आपसे कह गई—"न्याय-अन्याय की बात नहीं भाई । सम्बन्ध का बन्धन जब जटिल हो उठता है तब उसकी कथा अनेकों को व्यथित करती है । अनेक ओर से खींचा-तानी होती है, दोष किसे दिया जाय ?"

"यह जानता हूँ कि तुम सह सकोगी । एक दिन की बात याद आती है । क्या केश थे तुम्हारे, आज भी हैं । तुम्हारे मन में अपने केशों पर गर्व था । सभी तुम्हारे उस गर्व को प्रश्रय देते थे । एक दिन हुआ तुम्हारे साथ झगड़ा । दोपहर के समय तकिये पर केश फैलाये नींद में पड़ी थीं, मैंने हाथ में कैंची लेकर अन्ततः कोई आधे हाथ तक केश काट दिये । तब तक तुम जागकर खड़ी हो गईं । तुम्हारी ये काली आँखें और भी काली हो उठी थीं । केवल बोलीं—सोचते हो मुझे खिजाने को । कहकर मेरे हाथ से कैंची छुड़ाकर गर्दन के पास से कच-कच करके तुमने केश काट डाले थे । मौसा जी तुम्हें देखकर चकित हुए । बोले—"यह क्या काण्ड !" तुम शान्त मुख से अनायास बोलीं—"बड़ी गरमी लगती है ।" उन्होंने भी थोड़ा हँसकर सहज ही बात मान ली । प्रश्न नहीं किया, भर्त्सना नहीं की, केवल कैंची लेकर तुम्हारे केश बराबर कर दिये । तुम्हारे ही बड़े चाचा तो थे ।"

सरला हँसकर बोली—"तुम्हारी यही बुद्धि है । तुम सोचते हो यह मेरा क्षमा-परिचय था । बिल्कुल नहीं । उस दिन तुमने मुझे जितना

चिढ़ाया था, उससे भी अधिक चिढ़ाया था, कहीं मैंने तुझको। ठीक है कि नहीं, कहो।"

"खूब ठीक। वे कटे केश देखकर बाकी रखा था मैंने केवल रोना। उसके दूसरे दिन से लज्जावश तुम्हें मुँह नहीं दिखा सकता था। चुपचाप पढ़ने के कमरे में बैठा रहा। तुम घर में आते ही हाथ पकड़-कर हिड़-हिड़ करतीं खींचकर मुझे बगीचे के काम के लिये ले गईं, जैसे कुछ भी न हुआ हो। और एक दिन की बात याद आती है। वह जिस दिन फाल्गुन महीने में बे मौसम आँधी आकर मेरे सोने के कमरे का छप्पर उड़ाकर ले गई थी। तब तुमने आकर—"ठहरो और मत कहो आदित्य दादा," कहकर दीर्घ-निश्वास ली"—"वे सब दिन और न आयेंगे"—कहकर एकदम उठ पड़ी।

आदित्य ने व्याकुल होकर सरला का हाथ थामते हुए कहा—"नहीं, जाना नहीं, अभी जाना नहीं, कभी एक ही समय जाने का दिन आयेगा। तब............"

कहते-कहते उत्तेजित होकर बोल उठा—"किसी भी दिन क्यों जाना होगा? क्या अपराध हुआ, ईर्ष्या? आज दस साल संसार यात्रा में मेरी परीक्षा हो गई, उसका यही परिणाम! क्या लेकर ईर्ष्या? ऐसा होने से तो तेईस वर्ष का इतिहास मिटा देना होगा, जब से है मेरा साक्षात् तुम्हारे साथ।"

"तेईस वर्ष की बात नहीं कह सकती भाई, किन्तु तेईस वर्ष के इस शेषान्त में ईर्ष्या का क्या कोई कारण घटित नहीं हुआ? सच बात तो कहनी ही होगी। अपने आपको भुलाने से लाभ क्या? तुम्हारे हमारे बीच में कोई बात अस्पष्ट न रहनी चाहिये।"

आदित्य कुछ क्षण स्तब्ध होकर बैठा रहा। फिर बोल उठा—"अस्पष्ट और नहीं रही। मेरी अन्तरात्मा कहती है कि तुम्हारे न होने पर

संसार व्यर्थ है। जीवन की प्रथम बेला में जिनसे मैंने तुम्हें पाया है, उन्हें छोड़कर और कोई तुम्हें मुझसे नहीं निकाल सकता।"

"और न कहो आदित्य दादा, दुःख न बढ़ाओ। थोड़ा स्थिर होकर सोचने दो।"

"सोचना, लेकीन पीछे की ओर तो नहीं जाया जाता। दोनों ने जब मौसाजी की गोद में जीवन आरम्भ किया था, तब यह कुछ भी न सोचा था। आज उन दिनों की स्मृति-रेखा किसी भी प्रकार विलुप्त नहीं की जा सकती।"

"पैर पड़ती हूँ, मुझे दुर्बल न बनाओ। उद्धार-पथ दुर्गम न करो।"

आदित्य सरला का हाथ थामकर बोला—"उद्धार का पथ नहीं है, वह पथ मैं न रखूँगा, तुमसे प्रेम करता हूँ। यह बात आज इतनी सहज सत्य करके बोल पा रहा हूँ, इससे मेरा हृदय भर आया है। तेईस वर्ष तक जो कली रही, वह फूल में प्रस्फुटित हो उठी है। मैं कहता हूँ, इसे दबाने का प्रयत्न करनी होगी भीरुता, वह होगा अधर्म।"

"चुप, चुप, और कहो न। आज इस रात्रि की भाँति मुझे क्षमा प्रदान करो। क्षमा करो।"

"सरि, कृपापात्र मैं हूँ, तुम्हारी क्षमा के योग्य जीवन के शेष दिन पर्यन्त मैं ही हूँ। मैं कैसा अन्धा था? मैंने तुम्हें पहिचाना क्यों नहीं? क्यों मैंने भूल से विवाह कर डाला? तुमने तो किया नहीं, कितने पात्र कामना करके तुम्हारे लिये आये, यह तो मैं जानता हूँ।"

"बड़े चाचा ने अपने बगीचे के काम पर मेरा उत्सर्ग जो कर दिया नहीं तो.................."

"नहीं, नहीं.......तुम्हारा सत्य तुम्हारे मन की गहराई में उज्ज्वल था। न जानते हुए भी तुमने अपने आपको उससे बाँध रखा था। मुझे क्यों चैतन्य नहीं किया तुमने? मेरा पथ क्यों अलग हो गया?"

"रुको, रुको, जो मानना ही पड़ेगा, उसे न मानने के लिये यह

झगड़ा किसके साथ कर रहे हो? क्या होगा व्यर्थ छटपट करने से? कल दिन के समय जो हो कुछ उपाय स्थिर करना होगा।"

"अच्छा, चुप हो गया। किन्तु इस ज्योत्स्ना रात्रि में तुमसे बातें करे, मैं ऐसा उपाय कुछ तुम्हारे समीप रखे जाता हूँ।"

बगीचे में काम करने के लिये आदित्य की कमर में एक झोली बंधी रहती थी, कुछ न कुछ संग्रह करने की जरूरत से। उससे छोटे गुच्छे में बंधे पाँच नागकेशर के फूल उसने बाहर निकाले। बोला—मैं जानता हूँ, तुम्हें नागकेशर के फूल बहुत अच्छे लगते हैं। तुम्हारे कंधे के इस अंचल से बांध दूँ? यह सेफ्टीपिन लाया हूँ।"

सरला ने आपत्ति नहीं की। आदित्य ने सुयोग प्राप्त कर धीरे-धीरे, बाँध दिया। सरला उठ खड़ी हुई। आदित्य सामने खड़े दोनों हाथ बाँधे उसके मुँह की ओर ताकता रह गया, मानो देख रहा हो आकाश के चाँद को। बोला—"क्या विचित्र हो तुम सरि, क्या विचित्र!"

सरला हाथ छुड़ाकर दौड़ती चल पड़ी। आदित्य ने अनुकरण नहीं किया। जितने क्षण देख सका चुप खड़ा देखता रहा। इसके पश्चात् घाट की वेदी पर जा बैठा। नौकर ने आकर खबर दी—"भोजन आ गया?" आदित्य बोला—"आज मैं नहीं खाऊँगा।"

६

रमेन ने दरवाजे के पास से पूछा—"भाभी बुलाया है क्या?" नीरजा ने रुद्ध कण्ठ को परिष्कार करके उत्तर दिया—"आओ।"

घर के सब दीपक बुझे हुए। खिड़कियाँ खुलीं, ज्योत्स्ना पड़ रही है बिछौने पर, नीरजा के मुख पर और सिरहाने के समीप आदित्य के

दिये हुए उसी लावर्णाभ गुच्छ पर। शेष सब अस्पष्ट। तकिये से टिकी नीरजा आधी उठी—सी बैठी है, देख रही है खिड़की के बाहर। उस ओर अरकिड के घर के पार दिखाई पड़ती है, सुपारी-वृक्षों की कतार। बीच-बीच में हवा चल पड़ती है, पत्ते डोल उठते हैं, आम के बौर की गन्ध आती है। बहुत दूर से आती है : बहुत से मृदङ्ग और गायन का स्वर सुनाई दे रहा है, बैलगाड़ी चलाने वालों की बस्ती में होली जमी हुई है। मेज पर पड़ी है कुछ मलाई बर्फी और कुछ अबीर। दरवान दे गया है, उपहार।

रोगी के विश्राम-भंग से सम्पूर्ण घर आज निस्तब्ध है। एक वृक्ष से दूसरे वृक्ष तक 'पिउ कहाँ' चल रहा है, पक्षियों में उत्तर प्रत्युत्तर। कोई हार नहीं मानना चाहता। रमेन मोढ़ा खींच लाकर बिछौने के पास आ बैठा। पीछे रोदन फूट उठे, इस भय से अनेक क्षण नीरजा कोई बात न बोली। उसकी होठ काँपने लगी मानों गले के आस-पास वेदना की झड़ी आरम्भ हुई। कुछ देर में वह सम्हल गई और लावर्णनम्—गुच्छ से दो फूल खिसक कर उसकी हथेली में आ गिरे।

तत्पश्चात् कोई बात न कहकर रमेन के हाथों में एक चिट्ठी दे दी। चिट्ठी थी आदित्य की लिखी। उसमें लिखा था—

"इतने दिन के परिचय के उपरान्त, आज हठात् दिखाई पड़ा, तुम्हारे पक्ष में मेरी निष्ठा पर सन्देह करना सम्भव पर हुआ। इसे लेकर युक्ति तर्क करने में लज्जा बोध करता हूँ। तुम्हारे मन की वर्तमान अवस्था में, तुम्हारे अनुभव से मेरी सब बातें और सब कार्य विपरीत होंगे। उनका अकारण उत्पीड़न तुम्हारे दुर्बल शरीर को प्रति-क्षण आघात पहुँचाता रहेगा। जब तक तुम्हारा मन स्वस्थ न हो जाय मेरे पक्ष में तुमसे दूर रहना ही अच्छा होगा। यह भी समझ गया कि सरला को यहाँ के काम पर से विदा कर दूँ, यही तुम्हारी इच्छा है। हो तो करना पड़ेगा। सोचकर देखा, इसे छोड़कर और अन्य रास्ता नहीं, फिर भी कह देना चाहता हूँ,

मेरी शिक्षा-दीक्षा, उन्नति सब कुछ सरला के बड़े चाचा जी के प्रसाद से हुई। उन्होंने मुझे जीवन की सार्थकता का पथ दिखाया। उनके ही स्नेह का धन सरला सर्वस्वान्त निःसहाय है। आज यदि उसे बहा दूँ तो अधर्म होगा। तुम्हारे प्रति प्रेम की रक्षा के लिये भी यह न कर सकूँगा।"

अनेक बार सोचकर स्थिर किया है कि अपने व्यवसाय में एक नया विभाग खोलूँगा, फल-तरकारी के बीज तैयार करने का विभाग। मानिक तल्ले में मकान सहित जमीन मिल जायगी। वहीं सरला को काम पर लगा दूँगा। इस कार्य को आरम्भ करने योग्य रकम मेरे हाथ में नहीं है। अपना यही बगीचा-मकान बन्धक रखकर रुपया लाना होगा। इस प्रस्ताव कर विरोध न करो, यही मेरा एक अनुरोध है। स्मरण रखना, सरला के बड़े चाचाजी ने मुझे इस बगीचे के लिये बिना ब्याज के मूलधन कर्ज दिया था। सुना है, उसका भी कुछ अंश उन्हें कर्ज करना पड़ा था। केवल यही नहीं। कार्य आरम्भ करने योग्य बीज, कलमी वृक्ष, दुर्लभ फूल पौधों का खाद्य, अरकिड, घास काटने की मशीन तथा अन्यान्य यंत्र मुझे बिना मूल्य दान दिये थे। इतना बड़ा सुयोग यदि मुझे न देते तो आज तीस रुपये मकान-भाड़े की बाबूगिरी न करता होता, भाग्य में तुम्हारे साथ विवाह भी न घटित होता। तुमसे बातें होने के पश्चात् मेरे मन में बार-बार यही प्रश्न उठ रहा है, मैंने ही उसे आश्रय दिया है या मुझे ही आश्रय दिया है सरला ने? यह सहज-सी बात भूला हुआ था, तुमने मुझे स्मरण दिला दिया। अब तुम्हें भी स्मरण रखना होगा। कभी न सोचना, सरला है मेरा गलग्रह। किसी भी दिन उसका ऋण-शोध न कर पाऊँगा। मेरे ऊपर से उसका दावे का अन्त भी न हो सकेगा। तुम्हारे साथ उसका कभी साक्षात् न हो, इसकी चेष्टा का मन में ध्यान रहेगा। किन्तु मुझसे उसका सम्बन्ध विच्छिन्न होने को नहीं। यह बात जितनी आज समझ में आई, इसके आगे कभी उतनी न समझी थी।

सब बातें न कह पाई। मेरा दुःख आज अकथनीय हो गया है। यदि अनुमान से समझ सको तो समझो, अन्यथा यह होगी जीवन की मेरी प्रथम वेदना जो तुमसे अव्यक्त रहेगी।"

रमेन ने चिट्ठी को पढ़ा दो बार। पढ़कर चुप रह गया।

नीरजा व्याकुल स्वर में बोली—"कुछ थोड़ा कहो लालू।"

रमेन ने फिर भी कोई उत्तर न दिया।

अन्त में बिछौने पर लोटकर नीरजा तकिये से अपना माथा पीटने लग गई। बोली—"अन्याय किया, मैंने अन्याय किया है। पर तुम लोग क्या कोई समझ नहीं पाते कि किसी ने मेरा मस्तिष्क खराब कर दिया?"

"क्या करती हो भाभी? शान्त होओ, तुम्हारा शरीर चूर-चूर हो जायगा।"

"इसी चूर शरीर ने तो मेरा भाग्य फोड़ दिया, उसकी ममता ही किसलिये? उनके ऊपर अविश्वास—यह कहाँ से दिखाई दिया? यह अक्षय जीवन लेकर खुद अपने ही ऊपर आविश्वास। उनकी वही नीरू आज कहाँ है जिसे कभी वे बुलाते थे 'मालिनी' और कभी 'वनलक्ष्मी' कह कर। आज किसने उसके उपवन को काढ़कर ले लिया? क्या मेरा एक ही नाम था? काम पूरा करके आने में जिस दिन देर हो जाती, बैठी रहती इनके भोजन की प्रतीक्षा में। तब मुझे पुकारते थे 'अन्नपूर्णा'। सन्ध्याबेला में वे बैठते थे नदी के घाट पर, छोटी चाँदी की तश्तरी में बेल फूल राश करके उसके ऊपर पान बनाकर देती थी मैं उन्हें। और वे हँसकर मुझसे कहते—'ताम्बूल करङ्कवाहिनी।' उन दिनों संसार के सारे परामर्श वे मुझसे ही लेते थे। मुझे नाम दिया था 'गृहसचिव'। कभी-कभी 'होम सेक्रेटरी' भी। मैं मानो समुद्र में आई भरी नदी, अनेकों ओर अनेकों शाखाएँ छोड़ीं, सब शाखाओं का एक ही मुहूर्त्त में जल सूख गया, बाहर निकल पड़े पत्थर।"

"भाभी, फिर तुम अच्छी हो उठोगी। पूर्ण शक्ति प्राप्त कर फिर अपने आसन पर अधिकार कर लोगी।"

"व्यर्थ आशा न दो, लालू। डाक्टर क्या कहता है, वह मेरे कानों में पड़ता है। इसीलिये तो नैराश्य का कंगालपन इतने दिनों के सुख-संसार को अपने अँकवार में बटोरना चाहता है।"

"जरूरत क्या है भाभी? अपने आपको इतने दिन तो ठेल दिया तुमने अपने संसार में। उससे भी कोई बड़ी बात है क्या? जैसा दिया वैसा ही पाया, इतना पाना भी किस स्त्री को प्राप्त होता है? यदि डाक्टर की बात सच हो और जाने का दिन आ ही जाय तो जिसे बड़ा करके पाया है, उसे बड़ा ही करके छोड़ जाओ। इतने दीन जिस गौरव से काटे हैं, उस गौरव को गिरा कर दे जाओगी क्या? इस घर को जाते समय अपनी शेष स्मृति की नूतन महिमा देकर जाना।"

"छाती फटी जाती है लालू, छाती फटी जाती है। अपने दूसरे दिन के आनन्द को प्रसन्न चित्त से त्यागकर चली जा सकूँगी। किन्तु क्या कहीं भी इतनी साँस न होगी जहाँ मेरे लिये विरह का एक दीपक टिम-टिम करके भी जलेगा? इस बात को सोचने पर मरने की भी इच्छा नहीं करती। यह सरला एक बार में ही सब पर सम्पूर्ण दखल कर लेगी, विधाता का यही विचार है क्या?"

"सच्ची बात कहूँगा भाभी, नाराज न होना। तुम्हारी बात ठीक से समझ भी नहीं पाता। जिसका स्वयं उपभोग न कर पाओगी, क्या वह भी प्रसन्न मन से दान न कर सकोगी उसे, जिसे इतने दिन तक इतना दिया। अपने प्रेम पर इतना बड़ा धब्बा लगा जाओगी क्या? अपने संसार का अपनी ही श्रद्धा का प्रदीप तुम आप ही आज भस्म करने बैठी हो। उसकी व्यथा को पीछे छोड़कर तुम तो चली जाओगी, किन्तु चिर दिन उससे व्यथित होंगे हमलोग। विनती करके कहता हूँ, अपने सारे जीवन के दाक्षिण्य को शेष क्षण में कृपण करके न जाना।

फूट-फूट कर रो उठी नीरजा। चुप बैठा रहा रमेन। सान्त्वना देने की चेष्टा मात्र न थी, 'रोदन का वेग' रुकने पर नीरजा बिछौने में उठ कर बैठी। बोली—

"मेरी एक भीख है, लालू॥"

"आज्ञा दो भाभी।"

"कहती हूँ, सुनो। भीतर-भीतर आँखों के पानी में जब हृदय जलने लगता है, तब इसी परमहंस देव के चित्र की ओर ताका करती हूँ। किन्तु उनकी वाणी तो हृदय तक पहुँचती नहीं। मेरा मन है अपवित्र, क्षुद्र। जैसे हो सके मुझे गुरु का सन्धान दो। नहीं तो बन्धन कटेगा नहीं। आसक्ति में फँसी रहूँगी। जिस संसार में सुख से जीवन व्यतीत किया है मरने के उपरान्त वही दुखों के झंझट में युग-युगान्तर रो-रोकर भटकना होगा। उससे मेरा उद्धार करो, उद्धार करो।"

"तुम तो जानती हो भाभी, शास्त्रों में जिसे कहते हैं पाखण्ड, मैं वही हूँ। कुछ नहीं मानता। प्रभास मित्र एक बार अनेक खींचतान करके मुझे अपने गुरु के पास ले गये थे। बन्धन में आने के पहिले ही दी दौड़। जेलखाने की मीयाद है, यह बन्धन है बेमीयादी।"

"लालू, तुम्हारा मन है जोरदार, तुम किसी भी प्रकार मेरी विपदा नहीं समझोगे। खूब जानती हूँ, जितना ही आँक-बाँक करती हूँ, उतना ही डूबती जाती हूँ, अगाध जल में। सम्हल नहीं पाती हूँ।

"भाभी, एक बात कहता हूँ, सुनो। जितने क्षण स्मरण रखोगी कि तुम्हारा धन कोई काढ़कर लिये जा रहा है, उतने क्षण हृदय-पंजर अग्नि में जलेगा। शान्ति न पाओगी। किन्तु देखूँ, स्थिर होकर एक बार बैठकर बोल दो—'दिया मैंने। जो सबसे अधिक दुमूल्य वही दिया उन्हें, जिन्हें सबसे अधिक प्रेम करती हूँ।' सब बोझ एक ही क्षण में उतर जायगा। मन आनन्द से भर उठेगा। गुरु की आवश्यकता नहीं, अभी कहो—दिया, दिया, कुछ भी हाथों में नहीं रखा, अपना

सर्वस्व दे दिया, निर्मुक्त होकर। निर्मल होकर प्रस्थान के लिये प्रस्तुत हो गई। संसार में दुःख की कोई ग्रन्थि बँधी नहीं रखकर गई।"

"आहा, कहो, कहो लालू, बार-बार सुनाओ मुझे। उन्हें इसके 'अतिरिक्त' जो कुछ दे सकी हूँ, उसीसे आनन्द पाया है, आज जो दे नहीं पा रही वही इस तरह मार रहा है। दूँगी दूँगी, अपना सर्वस्व दूँगी, और देरी नहीं, अभी। तुम उन्हें बुलाकर ले आओ।"

"आज नहीं भाभी, कुछ दिन में अपने मन को बाँध लो, सहज हो जाय तुम्हारा संकल्प।"

"नहीं, नहीं, और नहीं सह पाती हूँ। जब से कह गये हैं कि यह घर छोड़ कर जापानी घर में जाकर रहेंगे तब से यह शय्या मेरे लिये चिता-शय्या हो गई है। यदि लौटकर नहीं आयेंगे, यह रात्रि कटेगी नहीं, छाती फाड़ कर मर जाऊँगी। अभी बुला ला सरला को, मैं अपनी छाती पर का पहाड़ उतार दूँगी, भय नहीं करूँगी, यही तुमसे कहती हूँ निश्चय करके।"

"समय नहीं हुआ भाभी, आज ठहरो।"

"समय जा रहा है पीछे, भय यही है। अभी बुला लाओ।" परमहंस देव के चित्र की ओर ताककर दोनों हाथ जोड़ कर बोली—"शक्ति दो ठाकुर, शक्ति दो, मुक्ति दो मतिहीन अधम नारी को। मेरे दुःख ने मेरे भगवान को भुला दिया, पूजा अर्चना सब गई मेरी। लालू, एक बात कहती हूँ, आपत्ति न करना।"

"क्या, कहो।"

"एक बार मुझे ठाकुरघर में जाने दो दस मिनिट के लिये, तब मैं कह सकूँगी कि और कोई भय न रहेगा।"

"अच्छा जाओ आपत्ति नहीं करूँगा।"

"आया"

"क्या बेटी?"

"मुझे ठाकुरघर में ले चल।"

"यह क्या बात, डाक्टर बाबू ?"

"डाक्टर बाबू जम को दूर नहीं रख सकते और मेरे ठाकुर को रखेंगे ?"

"आया, तुम उन्हें ले जाओ, डर नहीं, अच्छा ही होगा।" आया का सहारा लेकर जब नीरजा ठाकुरघर चली गई, उसी समय आदित्य पहुँचा घर में।

आदित्य ने पूछा—"यह क्या ? नीरू घर में क्यों नहीं ?"

"अभी आ जायँगी, वे ठाकुरघर गई हैं।"

"ठाकुरघर को ? ठाकुरघर तो निकट नहीं। डाक्टर का निषेध जो है।"

"सुनो न दादा। डाक्टर की औषधि से भी अधिक काम हो जायगा। एक बार केवल फूलों की अञ्जलि देकर प्रणाम करके लौट आयँगी।"

नीरजा को जिस समय पत्र लिखकर भेजा था, उस समय आदित्य यह स्पष्ट न जानता था कि उसके जीवन-पट पर अदृष्ट ने प्रथम जो लिपि अदृश्य स्याही से लिख रखी थी, बाहर का ताप लगने से वह एकाएक इतनी उज्वल हो उठेगी। प्रथम वह सरला से कहने आया था—और उपाय नहीं, विछोह करना होगा। यह बात कहते समय उसके मुँह से निकली उल्टी बात। उसके उपरान्त ज्योत्स्ना रात्रि में घाट पर बैठे-बैठे बार-बार बोलता रहा, जीवन के सत्य का बिलम्ब से आविष्कार कर सका, इसीलिये उसे अस्वीकार नहीं कर सकता। उसका तो अपराध नहीं है, कुछ भी लज्जा करने को नहीं है। अन्याय तब होगा जब सत्य को छिपाना चाहेगा। छिपायेगा नहीं, निश्चय स्थिर है, फलाफल जो हो सो हो। यह बात आदित्य खूब समझ चुका था कि यदि अपने जीवन के केन्द्र के कर्म-क्षेत्र से सरला को आज अलग कर दे तो उस एकाकिकता में, उस नीरसता में, उसका सब कुछ नष्ट हो जायगा, यहाँ तक कि उसका काम-काज भी बन्द हो जायगा।

"रमेन, तुम मेरी सब बातें जानते हो, मैं जानता हूँ।"

"हाँ जानता हूँ।"

"आज सम्पूर्ण कर दूँगा सब, आज परदा खोल फेकूँगा।"

"तुम्हीं अकेले तो नहीं हो दादा। बोझ गर्दन से उतार फेंकने से ही तो होगा नहीं। उस ओर हैं भाभी। संसार की ग्रन्थि जटिल है।"

"तुम्हारी भाभी हमारे बीच में मिथ्या को और खड़ा करके न रख सकेगी। बचपन से सरला के साथ मेरा जो सम्बन्ध है, उसमें कोई अपराध नहीं, यह बात तो मानते हो?"

"मानता ही हूँ।"

"उस सहज सम्बन्ध की तली में गम्भीर प्रेम ढँका था, जान नहीं पाया। यह क्या मेरा दोष है?"

"कौन कहता है दोष?"

"आज यदि उसी बात का गोपन करूँ तो ऐसा करने से होगा मिथ्या चरण का अपराध। मैं मुँह खोलकर कहूँगा।"

"गोपन ही करेंगे किसलिये, और समारोह करके प्रकट ही करेंगे क्यों? भाभी को जो जानने का था वह आप ही उन्होंने जान लिया। और कुछ ही दिन बाद तो इस परम दुःख की घटाएँ आप ही विलुप्त हो जायँगी। तुम यह सब लेकर व्यर्थ खींचातानी न करो। भाभी जो कहना चाहती हैं सुनो, उसके उत्तर में तुम्हारा जो कहना उचित हो, आप ही सहज हो जायगा सब।"

नीरजा को घर में आते देखकर रमेन बाहर चला गया।

नीरजा घर में आते ही आदित्य को देखकर मेज पर लोटती हुई पाँवों पर मस्तक रखकर अश्रु गद्गद कण्ठ से बोली—"क्षमा करो, क्षमा करो मुझे। अपराध किया है। इतने दिन उपरान्त मेरा त्याग न करो, दूर न फेंको मुझे।" आदित्य ने दोनों हाथों से उठाकर उसे हृदय से लगाते हुए धीरे-धीरे बिछौने पर सुला दिया। बोला—"नीरू, तुम्हारी

व्यथा क्या नहीं समझता ?" नीरजा का रोना बन्द नहीं होना चाहता। आदित्य धीरे-धीरे अपने हाथ से उसका माथा सहलाने लगा। नीरजा ने आदित्य का हाथ खींचते हुए अपनी छाती से लगा लिया। बोली—"सच कहो कि मुझे माफ किया। तुम्हारे प्रसन्न न होने से मुझे मौत के बाद भी सुख न मिलेगा।"

"तुम तो जानती हो नीरू बीच-बीच में हमारे बीच मतान्तर हो गया है, किन्तु उससे क्या मन का मेल छिन्न हो गया ?"

"इसके आगे तो किसी दिन घर छोड़कर नहीं गये तुम। इस बार कैसे चले गये ? तुम्हें इतना निष्ठुर किसने बना दिया ?"

"अन्याय किया है नीरू, माफ करना होगा।"

"जो कहा, उसका ठीक नहीं। तुम्हारी ही ओर से मुझे सब दण्ड, सब पुरस्कार। अभिमान से तुम्हारा विचार करने के कारण ही तो मेरी यह दशा हुई। लालू से कहा था सरला को बुला लाने को। अभी तक भी न ले आये ?"

सरला को बुला लाने की बात से आदित्य के मन को धक करके घाव लगा। समस्या को अन्ततः आज जैसे हो, किसी क्रम से दूर रख सकने से वह निश्चिन्त होगा। बोला—"रात हो गई है। अभी रहने दो।" इसी समय नीरजा बोल उठी—"हाँ सुनो, मुझे मालूम होता है कि वे लोग दरवाजे के बाहर अपेक्षा कर रहे हैं। लालू, तुम लोग घर में आओ।"

सरला को लेकर रमेन ने घर में प्रवेश किया। नीरजा बिछौना छोड़कर उठ खड़ी हुई। सरला ने नीरजा के पाँव छूकर प्रणाम किया। नीरजा बोली—"आओ बहिन मेरे समीप आओ।"

सरला का हाथ पकड़कर बिछौने पर बैठाया। तकिये के नीचे से गहनों का केस खींचकर निकालते हुए एक मोतियों की माला निकालकर सरला को पहिना दी। बोली—"एक दिन इच्छा की थी, जब चिता में

मेरा दाह हो यह माला मेरे गले में इस प्रकार रहे। किन्तु उससे यह अच्छा है। मेरी होकर तुम्हीं गले में माला पहिन कर रहो, शेष दिन पर्यन्त। विशेष-विशेष दिन यह माला कई बार पहिनी है, यह तुम्हारे दादा जानते हैं। तुम्हारे गले में रहने से उन्हें उस दिन माला का स्मरण होगा।"

"मैं अयोग्य हूँ दीदी, अयोग्य। क्यों मुझे लजाती हो?" नीरजा ने सोचा था, आज उसके सर्वदान-यज्ञ का यह भी एक अंग था। किन्तु उसके अन्तरतम मन की ज्वाला ने इसी दान में दीप्त हो प्रकाश पाया, यह बात स्वयं भी स्पष्ट न समझ सकी। यह व्यापार सरला को कितना अखरा, उसका अनुभव किया आदित्य ने। बोला—"वह माला मुझे दो न सरला। उसका मूल्य जितना मेरे पास है, उतना और किसी के पास नहीं। उसे मैं किसी और को न दे सकूँगा।" नीरजा बोली—"मेरा कपाल! समझी कि इतना करके भी न समझा सकी। सरला, सुना था कि इस बगीचे से तुम्हारे चले जाने की बात हुई थी। यह मैं किस प्रकार भी न होने दूँगी। मेरे संसार का जो कुछ है उस सब के साथ मैं तुम्हें बाँधकर रखूँगी, यह हार उसी का चिह्न है। अपना यह बन्धन तुम्हारे हाथों में दे दिया था जिससे मैं निश्चिन्त होकर मर सकूँ।"

"भूल की दीदी, मुझे बाँधना मत चाहो, उससे भला न होगा।"

"यह क्या बात?"

"मैं सच बात ही कहूँगी। इतने दिन मेरा विश्वास कर सकती थीं। किन्तु आज मुझ पर विश्वास मत करो, यही मैं तुम सबके सामने कहती हूँ। भाग्य ने जिस दान से मुझे वंचित किया है, दूसरे को वंचित करके उसे मैं न लूँगी। यह है तुम्हारे पाँवों पर मेरा प्रणाम। मैं चली। अपराध मेरा नहीं, अपराध है मेरे उन्हीं ठाकुर का जिनकी

सरला विश्वास से रोज दो बेला पूजा करती रही। उसका भी आज मैंने अन्त कर दिया।"

यह कहकर सरला द्रुत पद से घर से बाहर हो गई। आदित्य अपने आपको रोक कर न रख सका, वह भी चला गया।

"लालू, यह क्या हुआ लालू। कहो लालू, कुछ तो कहो।"

"इसीलिये कहा था, आज रात को न बुलाओ।"

"क्यों, मैंने तो मन खोलकर सभी दे दिया। उसने क्या यह भी न समझा?"

"समझे ही क्या? समझी कि तुम्हरा मन नहीं खुला। स्वर बजा नहीं।"

"कैसे भी विशुद्ध न हुआ मेरा मन। इतनी मार खाकर भी। कौन विशुद्ध करा देगा? अरे सन्यासी, मुझे बचाओ न। लालू, मेरा कौन है, मैं किसके पास जाऊँ?"

मैं हूँ भाभी। तुम्हारा दाँव मैं लूँगा। तुम अभी नींद लो।"

"नींद कैसे लूँ? यदि इस घर से वे फिर चले जायँगे तो मौत के सिवा मुझे नींद न आयगी।"

"वे न जा पायेंगे, यह उनकी इच्छा में नहीं, उनकी शक्ति में नहीं। यह लो नींद की औषधि, तुम्हें नींद दिला कर मैं जाऊँगा।"

'जाओ लालू, तुम जाओ, वे दोनों कहाँ गये, देखकर आओ। नहीं तो मैं खुद जाऊँगी, उससे मेरा शरीर भंग होता हो, हो जाय।"

अच्छा, अच्छा, मैं जाता हूँ।"

—:※:—

७

आदित्य को अपने साथ आया देखकर सरला बोली—"क्यों आये ? अच्छा नहीं किया। लौट जाओ। तुम्हें अपने साथ इस तरह नहीं बँधने दूँगी।"

"तुम बँधने दोगी या नहीं, यह तो बात है नहीं। बँध ही गया हूँ। यह अच्छा हो या बुरा उसमें हमारा हाथ नहीं।"

"यह सब बात होगी पीछे। लौट कर जाओ, रोगी को शान्त करो।"

"हमारे उस बगीचे की एक शाखा और बढ़ेगी, यही बात—"

"आज रहने दो। मुझे सोचने के लिये दो-चार दिन का समय दो, अभी मुझ में सोचने की शक्ति नहीं।"

रमेन आकर बोला—"जाओ दादा, भाभी को दवा पिलाकर नींद दिला दो। देर न करो। उन्हें किसी भी तरह बात न करने देना। रात हो गई है।"

आदित्य के चले जाने पर सरला बोली—"श्रद्धानन्द पार्क में कल तुम लोगों की एक सभा है न ?"

"है।"

"तुम जाओगे नहीं ?"

"जाने की बात थी, किन्तु इस तरह जाना न हो सकेगा।"

"क्यों ?"

"वह बात तुमसे कहने से क्या होगा ?"

"तुम्हें डरपोक कहकर सब निन्दा करेंगे।"

"जो मुझे पसन्द नहीं करते, वे मेरी निन्दा करेंगे ही क्या ?"

"ऐसा होने से तुम मेरी बात सुनो। मैं तुम्हें मुक्ति दूँगी। तुम्हें सभा में जाना ही होगा।"

"और थोड़ा स्पष्ट करो।"

"मैं भी जाऊँगी सभा में, हाथ में झंडा लेकर।"

"समझा।"

"पुलिस बाधा देगी, वह मानने को राजी हूँ, किन्तु तुम्हारे बाधा देने पर नहीं मानूँगी।"

"अच्छा, बाधा नहीं दूँगा।"

"यही बात रही।"

"रही।"

"कल सन्ध्या समय पाँच बजे हम दोनो एक ही साथ जायँगे।"

"हाँ जायँगे, किन्तु वे दुर्जन और फिर हमें एक साथ न रहने देंगे।"

उसी समय आदित्य आ पहुँचा। सरला ने पूछा—

"यह क्या, अभी आ गये ?"

"दो एक बात कहते-कहते ही नीरजा क्लान्त होकर सो गई। मैं धीरे-धीरे चला आया।"

'रमेन बोला—"मुझे काम है, चला।"

सरला हँस पड़ी—"स्थान ठीक करके रखना, भूलना मत।"

"कोई भय नहीं। जानी जगह है।" यह कहकर वह चला गया।

८

सरला बैठी थी, वह उठ खड़ी हुई। बोली—"जो सब कहने की बातें नहीं हैं, वे सब आज न कहो मुझसे। पैर पड़ती हूँ।"

"कुछ नहीं कहूँगा, डरो न।"

अच्छा ऐसा है तो मैं ही कुछ कहना चाहती हूँ, सुनो। बात रखनी होगी।"

"अरक्षणीय न होने से बात निश्चय रखूँगा, तुम यह जान लो।"

"समझने को बाकी नहीं कि मेरे समीप रहने से बिल्कुल भी न चलेगा। इस समय दीदी की सेवा कर सकने से खुशी होती, किन्तु उसे मेरा भाग्य सह्य नहीं कर सकेगा। मुझे अनुपस्थित ही रहना होगा। थोड़ा ठहरो, बात पूरी करने दो। सुना ही है, डाक्टर ने कहा है कि बहुत दिन उनका समय नहीं। इसके ही बीच में तुम्हें उनके मन का काँटा निकाल देना पड़ेगा। इन कुछ दिनों तक मेरी छाया भी उनके जीवन पर न पड़ने देना।"

"मेरे मन से यदि आप ही छाया पड़े तो मैं क्या कर सकता हूँ ?"

"नहीं, नहीं, अपने सम्बन्ध में इस प्रकार अश्रद्धा की बात न करो। तुम्हारा मन क्या साधारण बंगाली शिशु की तरह कोमल मिट्टी से बना है ? कभी नहीं, मैं तुम्हें जानती हूँ।"

आदित्य का हाथ पकड़ती हुई बोली—"मेरे होकर तुम यह व्रत कर लो। दीदी के जीवनान्त काल के अन्तिम दिनों को अपने दाक्षिण्य से पूर्ण कर दो। एक बार भुला दो कि उनके सौभाग्य भरे घर को फोड़ने के लिये मैं आई थी।"

आदित्य चुप होकर खड़ा रहा।

"वचन दो भाई।"

"दूँगा, किन्तु तुम्हें भी एक वचन देना होगा। बोलो, रखोगी ?"

"तुम्हारे और मेरे बीच में अन्तर यह है कि यदि मैं तुमसे कुछ प्रतिज्ञा कराती हूँ तो वह होती है साध्य, किन्तु यदि तुम कराते हो तो होती है असम्भव।"

"नहीं होगी।"

"अच्छा कहो।"

"जो बात मन ही मन कहता हूँ उसे तुम्हारे आगे मुख से बोलने में अपराध नहीं। तुमने जो कहा, वह व्रत लूँगा एवं उसे बिना त्रुटि

पालन करना भी सम्भव होगा, यदि यह निश्चित जान लूँ कि एक दिन मेरी सम्पूर्ण शून्यता तुम पूर्ण कर दोगी। क्यों चुप होकर क्यों रह गई ?"

"मालूम नहीं इस प्रतिज्ञा-पालन में एक दिन क्या विघ्न घटित हो।"

"विघ्न तुम्हारे अन्तर में क्या ? यह बात आगे कह दो।"

"क्यों मुझे दुख देते हो ? तुम क्या जानते नहीं कि बात ऐसी है जिसका प्रकाश भाषा में व्यक्त करने से विलुप्त हो जाता है।"

"अच्छा यह सुन लिया। इसे सुनकर चला काम पर।"

"और फिरकर न देखोगे अब ?"

"नहीं, किन्तु तुम्हारे मुँह से अव्यक्त प्रतिज्ञा की शील मोहर करा लेने की इच्छा होती है।"

"जो सहज है, उसे लेकर जोर न करो। अभी रुको।"

"अच्छा, तब एक बात पूछता हूँ, अब क्या करोगी, रहोगी कहाँ ?"

यह भार रमेन दादा ने लिया है।"

"रमेन तुम्हें आश्रय देगा क्या ?"

"तुम भय न करो उनका आश्रय पक्का है, खुद की सम्पत्ति नहीं, तो भी बाधा न होगी।"

"मैं जान तो सकूँगा ?"

"निश्चय जान सकोगे। वचन दिये जाती हूँ, किन्तु इस बीचमें मुझे देखने के लिये थोड़ा भी व्यग्र न होओगे, यह सच कहो।"

"तुम्हारा मन व्यग्र न होगा ?"

"यदि होगा, अन्तर्यामी के अतिरिक्त और कोई न जान सकेगा।"

"अच्छा, किन्तु जाते समय भिक्षा-पात्र बिल्कुल खाली ही रख कर विदा दोगी ?"

पुरुष के नेत्र छलछल कर उठे। सरला ने समीप आकर नीरवता से मुख थाम लिया।

६

"रोशनि !"

"क्या बेटी ?"

"कल से सरला को नहीं देखती, क्यों ?"

"यह क्या बात, जानती नहीं कि सरकार बहादुर ने उसका पुलीपोलाव चालान कर दिया है ?"

"दरवानों के साथ षडयंत्र करके बड़े लाट की मेम के घर में घुसी थी।"

"क्या करने को ?"

"महारानी की शील मोहर जिस बक्स में रहती है, उसे चुराने के लिये।"

"क्या लाभ ?"

"यह सुनो, उसे ही पाने से तो सब हो गया। लाट साहब को फाँसी दे सकती। उसी मोहर की छाप से तो राज्य चलता है।"

"और लालू ?"

"उनकी पगड़ी से सेंध काटने को छुड़ी निकली। हरिनबाड़ी गये। पचास वर्ष तक पत्थर फोड़ने पड़ेंगे। अच्छा बेटी, एक बात पूछती हूँ। घर से जाते समय सरला दीदी अपनी जाफरानी रंग की साड़ी मुझे दे गईं। बोलीं—"अपने बेटे की बहू को देना।" मेरी आँखों में पानी आ गया। कम दुःख तो दिया नहीं उसे। उस साड़ी को यदि रखूँ तो कम्पनी बहादुर पकड़ेगा तो नहीं ?"

"तुझे डर नहीं। मगर जल्दी जा। बाहर समाचारपत्र पड़ा है, ले आ।"

पत्र पढ़ा। आश्चर्य हुआ, आदित्य ने उसे इतनी बड़ी खबर भी न दी। यह कितनी अश्रद्धा ? जेल जाकर जीती वह लड़की। क्या मैं

न जा सकती, यदि शरीर स्वस्थ होता ? हँसते-हँसते फाँसी पर चढ़ सकती ।

"रोशनि, देखा तूने अपनी सरला दीदी का काण्ड ? भले घर की लड़की बाजार के लोगों के सामने—"

आया बोली—"ख्याल होते ही शरीर में काँटे उठ आते हैं, चोर-डाकुओं का घर । छिः छिः ।"

"यही तो है, आधी बहादुरी ! बेहयागिरी की एकदम हद । बगीचे से शुरू करके जेलखाने तक। मरते-मरते भी दिमाग न उतरेगा ।"

आया को जाफरानी रंग की साड़ी की बात का स्मरण हो आया । बोली—"लेकिन बेटी, दीदी मालकिन का मन उदार है ।" बात से नीरजा को बड़ा धक्का लगा । वह मानो हठात् जाग कर बोली—"ठीक कहती है रोशनि, ठीक कहती है । भूल गई थी । शरीर के खराब होने से मन भी खराब हो जाता है । आगे से ओछी-सी हो गई हूँ । छिः छिः अपने को मारने की इच्छा होती है । सरला चोखी लड़की है । झूठ बात नहीं जानती । ऐसी लड़की देखने में नहीं आती "मुझसे कहीं अच्छी है । जल्दी हमारे गणेश सरकार को बुला दे ।" आया के चले जाने पर वह पन्सिल लेकर चिट्ठी लिखने बैठी । गणेश आया । उससे बोली—सरला दीदी के पास तक जेलखाने में चिट्ठी पहुँचा सकोगे ? गणेश गांगुली को कृतित्व पर अभिमान था । बोला—"पहुँचा सकूँगा । कुछ खर्च लगेगा । किन्तु क्या लिखा है माँ, सुनूँ । क्योंकि चिट्ठी पुलिस के हाथ से जायगी ।"

नीरजा ने पढ़कर सुनाया—"धन्य है तुम्हारा महत्व । इस बार जेलखाने से निकल कर जब आओगे तब देखोगे कि मेरा पथ तुम्हारे पथ के साथ मिल गया है ।" गणेश बोला—"वह जो पथ की बात

लिखी है सुनने में भली नहीं लगती। अपने वकील बाबू को दिखाने से ठीक हो जायगी।"

गणेश चला गया। नीरजा मन ही मन रमेन को प्रणाम करके बोली—"लालू, तुम हो मेरे गुरु।"

१०

आदित्य ने एक प्याले में औषधि लिये हुए घर में प्रवेश किया।

नीरजा बोली—"यह फिर क्या?"

आदित्य बोला—"डाक्टर कह गया है कि घण्टे-घण्टे में औषधि खिलानी होगी।"

"औषधि खिलाने को मालूम होता है पड़ोस में और कोई आदमी न मिला। न हो तो दिन के वक्त के लिये एक नर्स रख दो न, यदि मन में इतना उद्वेग रहता है।"

"सेवा के बहाने यदि पास आने का सुयोग पाता हूँ तो कैसे छोड़ दूँ।"

"इससे अच्छा होगा कि किसी सुयोग से अपने बगीचे के काम पर जाओ तो मुझे बड़ी खुशी होगी। मैं पड़ी हूँ, और बगीचा दिन पर दिन नष्ट होता जा रहा है।"

"होने दो नष्ट। पहिले अच्छी हो जाओ, फिर पहिले की तरह दोनों मिलकर काम करेंगे।"

सरला चली गई। तुम अकेले पड़ गये। काम में मन जाता नहीं। लेकिन उपाय क्या? इसके लिये नुकसान न होने देना।

"नुकसान की बात मैं नहीं सोचता नीरू। बगीचा बनाना हमारा व्यवसाय है, यह बात इतने दिन तुमने भुलाकर रखी, इसीलिये काम में सुख था। अब मन नहीं जाता।"

"इस तरह क्यों आक्षेप करते हो? ठीक तो काम किया है अभी उस दिन तक। कुछ दिन के लिये यदि बाधा पड़े तो उससे ऐसे व्याकुल न हो जाना।"

"पंखा चला दूँ क्या?"

"बहुत हड़बड़ न करो तुम, यह सब तुम्हारा काम नहीं। इससे मुझे और भी व्यस्त कर डालते हो। यदि किसी तरह दिन काटना चाहते हो तो तुम लोगों का तो हर्टिकल्चरिस्ट क्लब है।"

"तुम जिस रंगीन लिली को पसन्द करती हो बगीचे में बहुत खोज कर भी एक भी नहीं पाई। इस बार वृष्टि अच्छी नहीं हुई, इससे पौधों में तेज नहीं।"

"क्या, तुम व्यर्थ बकते हो? इससे अच्छा हला को बुला दो। मैं पड़े-पड़े ही बगीचे का काम करूँगी। तुम क्या कहना चाहते हो कि मेरे सो जाने से मेरा बगीचा भी सो जायगा? सुनो मेरी बात। सूखे सीजन में फूल-पौधों को उखड़वाकर वहाँ जमीन तैयार करवा डालो। अपनी सीढ़ी के नीचे के घर में सरसों की खली का बस्ता है। हला के पास है उसकी चाभी।"

"ऐसा क्या? हला तो इतने दिन कुछ भी नहीं बोला।"

"बोलना उसे आयेगा कैसे? उसकी क्या तुम लोगों ने कम हेटी की है? कच्चा साहब आकर जिस तरह प्रवीन बाबू को ग्राह्य नहीं करता उसी तरह और क्या?"

"हला माली के सम्बन्ध में यदि सच बात कहना चाहूँ तो वह अप्रिय हो उठेगी।"

"अच्छा मैं बिछौने में पड़े-पड़े ही उसे काम देकर कराऊँगी। देखोगे

कि दो दिन में ही बगीचे का चेहरा फिरता है कि नहीं। बगीचे का मैप मेरे पास रख दो और मेरे बगीचे की डायरी। मैं मैप में पेन्सिल के निशान लगाकर सम्पूर्ण व्यवस्था करा दूँगी।"

"उसमें मेरा कोई हाथ नहीं रहेगा ?"

"नहीं! जाने से पहिले इस बगीचे में अपनी पूरी छाप मार दूँगी। कहे देती हूँ कि रास्ते के किनारे के वे वटल एक भी नहीं रखूँगी। उधर झाऊ-वृक्षों भी कतार लगवाऊँगी। इस तरह माथा मत डुलाओ। जब हो जाय तब देखना। तुम्हारी वह लॉन न रहने दूँगी, वहाँ मार्बल की एक वेदी बँधवाऊँगी"

"वेदी क्या उस जगह भली लगेगी ? कुछ वैसी ही जिसे कहते हैं, सस्ती नवाबी।"

"चुप रहो! खूब जँचेगी। तुम्हें कोई बात न बोलने दूँगी। कुछ दिन के लिये यह बगीचा केवल मेरा होगा, सम्पूर्ण मेरा। फिर बाद में अपना वह बगीचा मैं तुम्हें दे जाऊँगी। समझ लिया कि मेरी शक्ति चली गई। दिखा दूँगी कि क्या कर सहती हूँ। मुझे तीन माली और चाहिए और मजदूर भी लगेंगे छः एक जन। याद है तुमने एक दिन कहा था कि बगीचे को सजा कर खड़ा करने की मेरी शिक्षा नहीं हुई। हुई है कि नहीं इसकी परीक्षा देकर जाऊँगी। तुम्हें स्मरण रखना ही होगा कि यह बगीचा मेरा है, केवल मेरा बगीचा, मेरा स्वत्व किसी भी प्रकार न जायगा।"

"अच्छा यही ठीक, ऐसा होने से मैं क्या करूँगा ?"

"तुम अपनी दुकान लेकर बैठो। वहाँ तुम्हारे आफिस का काम तो कम नहीं।"

"तुम्हें लेकर रहना भी फिर निषिद्ध।"

"हाँ, हमेशा पास रहने वाली वह मैं और नहीं—अब मैं केवल और एक जन का स्मरण दिला सकती हूँ—उसे लाभ क्या ?"

"अच्छा ठीक! जब तुम मुझे हय कर सकोगी तब जाऊँगा।

मुझे बुलवा भेजना। आज टोकरी में तुम्हारे लिये गन्धराज लाया हूँ। रखे जाता हूँ तुम्हारे बिछौने पर। कुछ ख्याल न करना।" कह कर आदित्य उठ पड़ा।

नीरजा हाथ पकड़कर बोली—"नहीं, जाना नहीं। थोड़ा बैठो।" फूल-दानी में से एक फूल दिखाकर बोली—"जानते हो इस फूल का नाम ?"

आदित्य जानता है कि क्या जवाब देने से वह प्रसन्न होगी, इसी-लिये मिथ्या बोला—"नहीं, जानता नहीं।"

"मैं जानती हूँ। बताऊँ ? पेच्यूनिया। तुम समझते हो कि मैं कुछ नहीं जानती। मूर्ख हूँ मैं।"

आदित्य हँसकर बोला—"सहधर्मिणी हो तुम। यदि मूर्ख होओगी तो अन्ततः मेरी तरह मूर्ख। हमारे जीवन में मूर्खत्व का कार-बार आधा-आधी हिस्से में चलता है।"

"मेरे भाग्य में उस कारबार का इस बार शेष हो आया। वह जो दरवान वहाँ बैठा तम्बाकू कूट रहा है, वह रहेगा डेवढ़ी पर। कुछ दिन के बाद मैं न रहूँगी। वह बैलगाड़ी जो पत्थर का कोयला फेंक कर खाली फिरी जाती है, उसका यातायात चलेगा रोज-रोज किन्तु, चलेगा नहीं मेरा यह हृदय-यंत्र।" आदित्य का हाथ हठात् जोर से दबोच लिया। बोली—"एकदम न रहेगा। बिल्कुल भी न रहेगा। कहो मुझसे तुमने तो अनेक पुस्तकें पढ़ी हैं, कहो न मुझसे सच-सच।"

"जितनी पुस्तकें पढ़ी हैं उनकी विद्या जितनी दूर है, मेरी भी उतनी ही दूर है। यम के दरवाजे के समीप आकर रुका हूँ और आगे जाने की सामर्थ्य नहीं।"

"कहो न कि तुम क्या ख्याल करते हो। थोड़ा भी न रहेगा ? थोड़ा भी नहीं ?"

"इस क्षण है यही। यदि सम्भव हो तो तब भी रहेंगे, वह भी सम्भव है।"

"निश्चय ही सम्भव, यह बगीचा सम्भव है और मैं भी सम्भव

हाऊँगी, यह हो ही नहीं सकता, कैसे भी नहीं। सन्ध्या बेला में इसी प्रकार अस्पष्ट प्रकाश में घर पर फाग उड़ेंगे, इसी प्रकार सुपारी वृक्षों की डालें डोलेंगी। ठीक हमारी आँखों के सामने उस दिन तुम स्मरण रखना। मैं हूँ, मैं हूँ, सम्पूर्ण उद्यानमय मैं हूँ। स्मरण रखो, वायु का झोंका जब तुम्हारे केश उड़ाता है, उसमें होता है, मेरी अंगुली का स्पर्श। बोलो स्मरण रखोगे ?"

आदित्य को बोलना पड़ा—"हाँ, स्मरण रखूँगा।" किन्तु ऐसे स्वर में नहीं बोल सका जिसमें उसके विश्वास का प्रमाण हो।

नीरजा अस्थिर होकर बोल उठी—"तुम लोगों की पुस्तकें जो लिखते हैं वे तो बड़े पण्डित होते हैं, कुछ नहीं जानते। मैं निश्चय जानती हूँ, मेरी बात पर विश्वास करो। मैं रहूँगी, मैं यहीं रहूँगी, मैं तुम्हारे ही समीप होऊँगी, एकदम स्पष्ट देख पा रही हूँ। यह तुमसे कहे जाती हूँ, वचन दिये जाती हूँ कि तुम्हारे बगीचे के पेड़-पौधे सब मैं देखूँगी। जिस तरह पहिले देखती थी उससे भी अच्छी तरह देखूँगी। किसी की जरूरत नहीं होगी। किसी की नहीं।"

बिछौने में लेटी थी नीरजा। उठकर तकिये का सहारा लेकर बैठ गई। बोली—"मुझ पर दया करना, दया करना। तुम्हें इतना प्यार करती हूँ, यही बात याद करके मुझ पर दया करना। इतने दिन तुमने मुझे जिस आदर से अपने घर में स्थान दिया है, उस दिन भी इसी प्रकार स्थान देना। ऋतु-ऋतु में ज्यों ही तुम्हारे ये फूल प्रस्फुटित हों, उसी प्रकार मन ही मन मेरे हाथों में दे देना। यदि तुम निष्ठुर हो जाओगे तो फिर तो यहाँ मैं न ठहर पाऊँगी। यदि मेरा बगीचा काट लोगे तो फिर मैं हवा-हवा पर कौन शून्य में मिलकर भटकूँगी ?" नीरजा के दोनों नेत्रों से जल भरने लगा।

आदित्य मोढ़ा छोड़ कर बिछौने के ऊपर उठकर बैठ गया। नीरजा का मुख छाती से लगा कर धीरे-धीरे उसके माथे को हाथ से सहलाने लगा। बोला—"नीरू, शरीर को नष्ट न करो।"

"जाने दो मेरा शरीर। मैं और कुछ नहीं चाहती, मैं चाहती हूँ केवल तुम्हें, इसी सब कुछ के साथ। सुनो, एक बात कहती हूँ, मेरे ऊपर नाराज न होओ, नाराज न होओ।" कहते कहते स्वर रुद्ध हो आया। थोड़ा शान्त होने के उपरान्त बोली—"सरला पर अन्याय किया है। तुम्हें पाँव पड़कर कहती हूँ, और अन्याय न करूँगी। जो हो गया उसके लिये मुझे क्षमा करो। किन्तु मुझसे प्रेम करो, प्रेम करते रहो तुम, जो चाहो मैं सब करूँगी।"

आदित्य बोला—"शरीर के साथ-साथ मन था अस्वस्थ, नीरू इसीलिये अपने को मिथ्या पीड़ित किया।"

सुनो कहूँ। कल रात्रि से बारबार प्रण किया है, इस बार दिखाई देने से अपनी बहिन की तरह उसे निर्मल मन से छाती से लगा लूँगी। तुम मेरी इस शेष प्रतिज्ञा-रक्षा में सहायता करो। बोलो, मैं तुम्हारे प्रेम से वंचित न होऊँगी, ऐसा हो तो सभी को अपना प्रेम देकर जा सकूँगी।"

इस बात का कोई उत्तर न देकर आदित्य ने बारबार चुम्बन किया उसके मुख और कपाल का। मुँद गये नीरजा के नेत्र। थोड़ी देर बाद नीरजा ने पूछा—"सरला अब मुक्ति पायेगी। उस दिन का हिसाब कर रही हूँ। भय होता है फिर उसके पहिले ही मर जाऊँ। फिर कहकर न जा सकूँगी कि मेरा मन एकदम स्वच्छ हो गया है। अब दीपक जलाओ। मुझे पढ़कर सुनाओ अक्षय बड़ाल की 'एषा'।" तकिये के नीचे से पुस्तक निकाल कर दे दी। आदित्य पढ़कर सुनाने लगा।

सुनते-सुनते ज्यों ही, थोड़ी नींद आई आया घर में आकर बोली—"चिट्ठी।" नींद टूटने से नीरजा चौंक उठी। धड़-धड़ कर उठा हृदय। किसी मित्र ने आदित्य को खबर दी थी, जेल में स्थानाभाव है, इसलिये कितने ही कैदियों को अवधि उत्तीर्ण होने से पहिले ही मुक्त कर दिया जायगा। सरला है उनमें से एक जन। आदित्य का मन उछल पड़ा। प्राण-प्रण के कारण मन के उल्लास दबा लिया। नीरजा ने

पूछा—"किसकी चिट्ठी है, क्या खबर है ?"

फिर पढ़ने से कण्ठ की आवाज काँप जाय, चिट्ठी नीरजा के ही हाथों में दे दी। नीरजा ने आदित्य के मुख की ओर ताका। मुख में बात नहीं की सही, किन्तु बात का प्रयोजन भी नहीं था! नीरजा के मुँह से भी कुछ क्षण बात न निकली। इसके बाद खूब ज़ोर से बोली—"तब तो और देरी नहीं। आज ही आयेगी। उसे लाओगे मेरे पास।"

"यह क्या ? क्या हुआ नीरू ? नर्स ! डाक्टर हैं ?"

"हैं, बाहर के घर में।"

"अभी ले आओ, यह हैं डाक्टर। अभी-अभी ठीक सहज शरीर से बात करती थीं; बोलते-बोलते अचेत हो गईं।"

डाक्टर नाड़ी देखकर चुप होकर रह गया।

कुछ क्षण पश्चात् रोगी ने आँखें मींचे हुए ही कहा—"डाक्टर मुझे बचाना ही होगा। सरला को बिना देखे ना जा सकूँगी। इससे भला न होगा। उसे अशीर्वाद दूँगी। शेष आशीर्वाद।"

फिर आँखें बन्द हो आईं। हाथ की मुट्ठियाँ कड़ी हो गईं। बोल उठी—"लालू, बात रखूँगी। कृपण की तरह न मरूँगी।"

एक-एक बार चेतना क्षीण होकर संसार धुँधला हो आता है और फिर बुझते हुए दीपक की भाँति जीवन-शिखा जल उठती है। स्वामी से बार-बार पूछती है—"कब आयगी सरला ?"

बार-बार वह बुला उठती है—"रोशनि।"

आया कहती है—"क्या बेटी।"

"लालू को बुला दे अभी।" कभी-कभी स्वयं बोल उठती है—"मेरा क्या होगा लालू ! दूँगी, दूँगी, दूँगी, सब दूँगी।"

तब रात्रि के नौ बजे थे। नीरजा के घर के कोने में क्षीण प्रकाश से जल रही थी एक मोमबत्ती। वायु में थी दोलनचम्पा की गन्ध। खुली खिड़की से दिखाई पड़ती है बगीचे के वृक्षों की पुञ्जीभूत कालिमा और

उसके ऊपर के आकाश में काल पुरुष की नक्षत्र-श्रेणी। रोगी सोता है यह आशंका करके सरला को दरवाजे के पास ठहरा कर आदित्य धीरे-धीरे नीरजा के बिछौने के समीप आया।

आदित्य ने देखा—ओंठ बज रहे हैं मानों निःशब्द कुछ जप कर रही हो। ज्ञानाज्ञान से जड़ित विह्वल मुख। कान के समीप माथा ले जाकर आदित्य ने कहा—"सरला आ गई।" नेत्र ईषत् खोलकर नीरजा बोली—"तुम जाओ"—एक पुकार उठी—"लालू।"—कहीं भी प्रत्युत्तर नहीं।

सरला के आने पर प्रणाम करने के लिये पाँव पर हाथ लगाते ही विद्युत के-से आघात से उसका सम्पूर्ण शरीर आक्षिप्त हो उठा। पाँव जल्दी आप ही हट गये। भग्न कण्ठ से बोल उठी—"न दे सकी, न दे सकी, न दे सकूँगी"—कहते-कहते शरीर में अस्वाभाविक जोर आया, आँखों के तारे प्रसारित होकर जलने लगे। सरला का हाथ दबोच लिया, कण्ठ का स्वर तीक्ष्ण हो गया। बोली—"जगह न होगी तेरे लिये राक्षसी! जगह न होगी। मैं रहूँगी, रहूँगी, रहूँगी।"

हठात् ढीली सेमिज पहिनी हुई पाण्डु वर्ण शीर्ण-मूर्ति बिछौना छोड़ कर खड़ी हो उठी। अद्भुत गले से बोली—"भाग, भाग, भाग अभी, नहीं तो दिन पर दिन पत्थर बाँधूगी तेरी छाती से, सुखा डालूँगी तेरा रक्त।" कहते ही मेज के ऊपर गिर पड़ी।

गले का शब्द सुन कर आदित्य घर में दौड़ा आया, तब तक प्राणों की सम्पूर्ण शक्ति बिखेर कर नीरजा की शेष-कथा स्तब्ध हो चुकी थी।

समाप्त

Durga Sah Municipal Library NAINITAL
नैनीताल